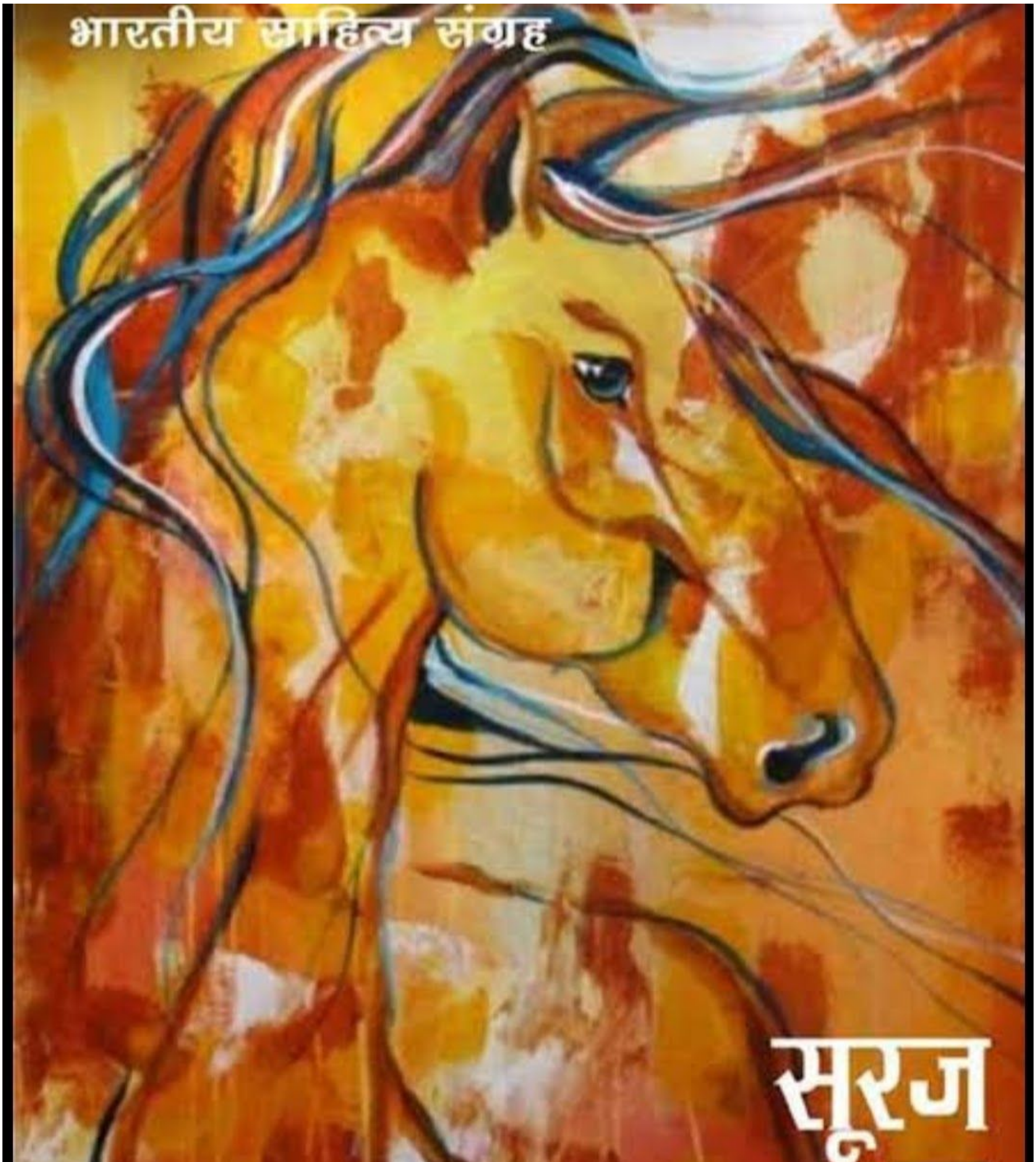
भारतीय साहित्य संग्रह
सूरज
का
सातवां घोड़ा
धर्मवीर भारती

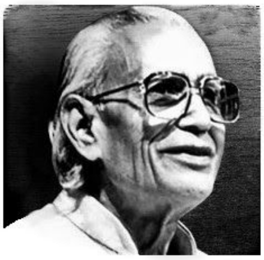

धर्मवीर भारती

- जन्म : 25 दिसंबर 1926, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
- भाषा : हिंदी
- विधाएँ: कहानी, कविता, नाटक, निबंध, उपन्यास
- कहानी संग्रह : मुर्दों का गाँव, स्वर्ग और पृथ्वी, चाँद और टूटे हुए लोग, बंद गली का आखिरी मकान, साँस की कलम से
- कविता संग्रह : ठंडा लोहा, सात गीत-वर्ष, कनुप्रिया, सपना अभी भी
- उपन्यास : गुनाहों का देवता, सूरज का सातवाँ घोड़ा
- निबंध : ठेले पर हिमालय, पश्यंती
- नाटक : अंधा युग
- आलोचना : प्रगतिवाद : एक समीक्षा, मानव मूल्य और साहित्य, कहनी अनकहनी
- संपादन : धर्मयुग, आलोचना, निकष
- सम्मान: पद्मश्री सम्मान, हल्दीघाटी श्रेष्ठ पत्रकारिता पुरस्कार, सर्वश्रेष्ठ नाटककार पुरस्कार (संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली), भारत भारती पुरस्कार (उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान), महाराष्ट्र गौरव
- निधन : 4 सितंबर 1997, मुंबई

आगे बढ़ो,

सूर्योदय रुका हुआ है!

सूरज को मुक्त करो ताकि संसार में प्रकाश हो,

देखो उसके रथ का चक्र कीचड़ में फँस गया है

आगे बढ़ो साथियो!

सूरज के लिए यह संभव नहीं कि वो अकेले उदित हो सके

घुटने जमा कर, सीना अड़ा कर

उसके रथ को कीचड़ से उबारो!

देखो, हम सब उसको सहारा दे रहे हैं

क्योंकि हम सब

सूरज के अंश हैं।

- एंजेलो सिकेलिय

त्रिलोकी-द्वय

कातिक और गोपेश को

अमित स्नेह से

भूमिका

(प्रथम संस्करण से)

लेखक को दो चीजों से बचना चाहिए : एक तो भूमिकाएँ लिखने से, दूसरे अपने समवर्ती लेखकों के बारे में अपना मत प्रकट करने से। यहाँ मैं ये दोनों भूलें करने जा रहा हूँ; पर इसमें मुझे जरा भी झिझक नहीं है, खेद की तो बात ही क्या। मैं मानता हूँ; कि धर्मवीर भारती हिंदी की उन उठती हुई प्रतिभाओं में से हैं जिन पर हिंदी का भविष्य निर्भर करता है और जिन्हें देख कर हम कह सकते हैं कि हिंदी उस अँधियारे अंतराल को पार कर चुकी है जो इतने दिनों से मानो अंतहीन दीख पड़ता था।

प्रतिभाएँ और भी हैं, कृतित्व औरों का भी उल्लेख्य है। पर उनसे धर्मवीर जी में एक विशेषता है। केवल एक अच्छे, परिश्रमी, रोचक लेखक ही नहीं हैं; वे नई पौध के सबसे मौलिक लेखक भी हैं। मेरे निकट यह बहुत बड़ी विशेषता है, और इसी की दाद देने के लिए मैंने यहाँ वे दोनों भूलें करना स्वीकार किया है जिनमें से एक से तो मैं सदा बचता आया हूँ; हाँ, दूसरी से बचने की कोशिश नहीं की क्योंकि अपने बहुत-से समकालीनों के अभ्यास के प्रतिकूल मैं अपने समकालीनों की रचनाएँ पढ़ता हूँ तो उनके बारे में कुछ मत प्रकट करना बुद्धिमानी न हो तो अस्वाभाविक तो नहीं है।

भारती जीनियस नहीं हैं : किसी को जीनियस कह देना उसकी प्रतिभा को बहुत भारी विशेषण दे कर उड़ा देना ही है। जीनियस क्या है, यह हम जानते ही नहीं। लक्षणों को ही जानते हैं : अथक श्रम-सामर्थ्य और अध्यवसाय,

बहुमुखी क्रियाशीलता, प्राचुर्य, चिरजाग्रत चिर-निर्माणशील कल्पना, सतत जिज्ञासा और पर्यवेक्षण, देश-काल या युग-सत्य के प्रति सतर्कता, परंपराज्ञान, मौलिकता, आत्मविश्वास और-हाँ, - एक गहरी विनय। भारती में ये सभी विद्यमान हैं; अनुपात इनका जीनियसों में भी समान नहीं होता। और भारती में एक चीज और भी है जो प्रतिभा के साथ जरूरी तौर पर नहीं आती - हास्य।

ये सब बातें जो मैं रहा हूँ, इन्हें वही पाठक समझेगा जिसने भारती की अन्य रचनाएँ भी पढ़ी हैं, जैसे कि मैंने पढ़ी हैं। जिसने वे नहीं पढ़ीं, वह सोच सकता है कि इस तरह की साधारण बातें कहने से क्या लाभ जिनकी कसौटी प्रस्तुत सामग्री से न हो सके? और उसका सोचना ठीक होगा : स्थाली-पुलाक न्याय कहीं लगता है तो मौलिक प्रतिभा की परख में, उसकी छाप छोटी-सी अलग कृति पर भी स्पष्ट होती है; और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' पर भी धर्मवीर की विशिष्ट प्रतिभा की छाप है।

सबसे पहली बात है उसका गठन। बहुत सीधी, बहुत सादी, पुराने ढंग की - बहुत पुराने, जैसा आप बचपन से जानते हैं - अलफलैला वाला ढंग, पंचतंत्र वाला ढंग, बोकैच्छियो वाला ढंग, जिसमें रोज किस्सागोई की मजलिस जुटती है, फिर कहानी में से कहानी निकलती है। ऊपरी तौर पर देखिए तो यह ढंग उस जमाने का है जब सब काम फुरसत और इत्मीनान से होते थे; और कहानी भी आराम से और मजे ले कर कही जाती थी। पर क्या भारती को वैसी कहानी वैसे कहना अभीष्ट है? नहीं, यह सीधापन और पुरानापन इसीलिए है कि आपमें भारती की बात के प्रति एक खुलापन पैदा हो जाए; बात वह फुरसत का वक्त काटने या दिल बहलाने वाली नहीं है, हृदय को

कचोटने, बुद्धि को झँझोड़ कर रख देनेवाली है। मौलिकता अभूतपूर्व, पूर्ण श्रृंखला-विहीन नएपन में नहीं, पुराने में नई जान डालने में भी है (और कभी पुरानी जान को नई काया देने में भी); और भारती ने इस ऊपर से पुराने जान पड़नेवाले ढंग का भी बिलकुल नया और हिंदी में अनूठा उपयोग किया है। और वह केवल प्रयोग-कौतुक के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि वह जो कहना चाहते हैं उसके लिए यह उपयुक्त ढंग है।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' एक कहानी में अनेक कहानियाँ नहीं, अनेक कहानियों में एक कहानी है। वह एक पूरे समाज का चित्र और आलोचन है; और जैसे उस समाज की अनंत शक्तियाँ परस्पर-संबद्ध, परस्पर आश्रित और परस्पर संभूत हैं, वैसे ही उसकी कहानियाँ भी। प्राचीन चित्रों में जैसे एक ही फलक पर परस्पर कई घटनाओं का चित्रण करके उसकी वर्णनात्मकता को संपूर्ण बनाया जाता है, उसमें एक घटना-चित्र की स्थिरता के बदले एक घटनाक्रम की प्रवाहमयता लायी जाती है, उसी प्रकार इस समाज-चित्र में एक ही वस्तु को कई स्तरों पर, कई लोगों से और कई कालों में देखने और दर्शाने का प्रयत्न किया गया है, जिससे उसमें देश और काल दोनों का प्रसार प्रतिबिंबित हो सके। लंबाई और चौड़ाई के दो आयामों के फलक में गहराई का तीसरा आयाम छाँही द्वारा दिखाया जाता है; समाज-चित्र में देश के तीन आयामों के अतिरिक्त काल के भी आयाम आवश्यक होते हैं और उन्हें दर्शाने के लिए चित्रकार को अन्य उपाय ढूँढ़ना आवश्यक होता है।

वह चित्र सुंदर, प्रीतिकर या सुखद नहीं है; क्योंकि उस समाज का जीवन वैसा नहीं है और भारती ने चित्र को यथाशक्य सच्चा उतारना चाहा है। पर वह असुंदर या अप्रीति कर भी नहीं, क्योंकि वह मृत नहीं है, न मृत्युपूजक ही

है। उसमें दो चीजें हैं जो उसे इस खतरे से उबारती हैं - और इनमें से एक भी काफी होती है : एक तो उसका हास्य, भले ही वह वक्र और कभी कुटिल या विद्रूप भी हो; दूसरे एक अदम्य और निष्ठामयी आशा। वास्तव में जीवन के प्रति यह अडिग आस्था ही सूरज का सातवाँ घोड़ा है, 'जो हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है ताकि हम वह रास्ता बना सकें जिस पर हो कर भविष्य का घोड़ा आएगा।' इस वस्तु का इतना सुंदर निर्वाह, उसके गंभीरतर तात्पर्यों का इस साहसपूर्ण और ईमानदार ढंग से स्वीकार, और उस स्वीकृति में भी उससे न हार कर उठने का निश्चय - ये सब 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' को एक महत्वपूर्ण कृति बनाते हैं।

'पर कोई-न-कोई चीज ऐसी है जिसने हमेशा अँधेरे को चीर कर आगे बढ़ने, समाज-व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुन: स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है। चाहे उसे आत्मा कह लो, चाहे कुछ और। और विश्वास,साहस, सत्य के प्रति निष्ठा, उस प्रकाशवाही आत्मा को उसी तरह आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े सूर्य को आगे बढ़ा ले चलते हैं।' ये पुस्तक के कथा-नायक और प्रमुख पात्र माणिक मुल्ला के शब्द हैं। किसी उक्ति के निमित्त से एक पात्र के साथ लेखक को संपूर्ण रूप से एकात्म करने की प्रचलित मूर्खता मैं नहीं करूँगा, पर इस उक्ति में बोलने वाला वह विश्वास स्वयं भारती का भी विश्वास है, ऐसा मुझे लगता है; और वह विश्वास हम सबमें अटूट रहे, ऐसी मेरी कामना है।

वसंत पंचमी, वि. सं. 2008 -
अज्ञेय

निवेदन

'गुनाहों का देवता' के बाद यह मेरी दूसरी कथा-कृति है। दोनों कृतियों में काल-क्रम का अंतर पड़ने के अलावा उन बिंदुओं में भी अंतर आ गया है जिन पर हो कर मैंने समस्या का विश्लेषण किया है।

कथा-शैली भी कुछ अनोखे ढंग की है, जो है तो वास्तव में पुरानी ही, पर इतनी पुरानी कि आज के पाठक को थोड़ी नई या अपरिचित-सी लग सकती है। बहुत छोटे-से चौखटे में काफी लंबा घटना-क्रम और काफी विस्तृत क्षेत्र का चित्रण करने की विवशता के कारण यह ढंग अपनाना पड़ा है।

मेरा दृष्टिकोण इन कथाओं में स्पष्ट है; किंतु इनमें आए हुए मार्क्सवाद के जिक्र के कारण थोड़ा-सा विवाद किसी क्षेत्र से उठाया जा सकता है। जो लोग सत्य की ओर से आँख मूँद कर अपने पक्ष को गलत या सही ढंग से प्रचारित करने को समालोचना समझते हैं, उनसे मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि साहित्य की प्रगति में उनका कोई रचनात्मक महत्व मैं मानता ही नहीं; हाँ, जिसमें थोड़ी-सी समझदारी, सहानुभूति और परिहास-प्रवृत्ति है उनसे मुझे एक स्पष्ट बात कहनी है :

पिछले तीन-चार वर्षों में मार्क्सवाद के अध्ययन से मुझे जितनी शांति, जितना बल और जितनी आशा मिली है, हिंदी की मार्क्सवादी समीक्षा और चिंतना से उतनी ही निराशा और असंतोष। अपने समाज, अपनी जन-संस्कृति और उसकी परंपराओं से वे नितांत अनभिज्ञ रहे हैं। अत: उनके निष्कर्ष ऐसे ही रहे हैं कि उन पर या तो रोया जा सकता है या दिल खोल कर

हँसा जा सकता है। फिर उसकी कमियों की ओर इशारा करने पर वे खीज उठते हैं, वह और भी हास्यापद और दयनीय है।

इसके बावजूद मेरी आस्था कभी भी मार्क्सवाद में कम नहीं हुई और न मैंने अपनी जनता के दु:ख-दर्द से मुँह फेरा है। धीरे-धीरे अपने दृष्टिकोण में अधिकाधिक सामाजिकता विकसित करने की ओर मैं ईमानदारी से उन्मुख रहा हूँ और रहूँगा। और उसी दृष्टि से जहाँ मुझे मार्क्सवादी शब्दजाल के पीछे भी असंतोष, अहंवाद और गुटबंदी दीख पड़ी है उसकी ओर साहस से स्पष्ट निर्देश करना मैं अनिवार्य समझता हूँ क्योंकि ये तत्व हमारे जीवन और हमारी संस्कृति की स्वस्थ प्रगति में खतरे पैदा करते हैं। मैं जानता हूँ कि जो मार्क्सवादी अपने व्यक्तित्व में सामाजिक तथा मार्क्सवाद की पहली शर्त ऑब्जेक्टिविटी विकसित कर चुके हैं, वे मेरी बात समझेंगे और इतना मेरे संतोष के लिए यथेष्ट है।

इसकी भूमिका श्री अज्ञेय ने लिखनी स्वीकार कर ली, इसके लिए मैं उनका कितना आभारी हूँ यह शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। वे मेरे अंतर की आस्था और ईमानदारी को पहचानते हैं और आज के युग में किसी भी लेखक को इससे अधिक क्या चाहिए! उन्होंने इसकी शैली तथा विषय-वस्तु के मर्म को जैसे प्रस्तुत किया है, वह केवल उन्हीं के लिए संभव था। मेरे प्रति उन्होंने जो कुछ अनुशंसात्मक वाक्य लिखे हैं, पता नहीं मैं उनके योग्य हूँ या नहीं, पर मैं उन्हें स्नेह आशीर्वादों के रूप में सिर झुका कर ग्रहण करता हूँ और चाहता हूँ कि अपने को उनके योग्य सिद्ध कर सकूँ। अपने पाठकों से मुझे अक्सर बड़े अनोखे ओर बड़े स्नेहपूर्ण पत्र मिलते रहे हैं। मेरे लिए वे मूल्यवान निधियाँ हैं। उनसे मैं एक बात कहना चाहता हूँ - मैं लिख-लिख

कर सीखता चल रहा हूँ और सीख-सीख कर लिखता चल रहा हूँ। जो कुछ लिखता हूँ उसमें सामाजिक उद्देश्य अवश्य है पर वह स्वांत:सुखाय भी है। यह अवश्य है कि मेरे 'स्व' में आप सभी सम्मिलित हैं, आप सभी का सुख-दु:ख, वेदना-उल्लास मेरा अपना है : वास्तव में वह कोई बहुत बड़ी कहानी है जो हम सबों के माध्यम से व्यक्त हो रही है। केवल उसी का एक अंश मेरी कलम से उतर आया है। इसीलिए इसमें जो कुछ श्रेयस्कर है वह आप सभी का ही है; जो कुछ कमजोरियाँ हैं कृति में, वह मेरी अपनी समझी जाएँ।

शिवरात्रि धर्मवीर भारती

23 फरवरी, 1952

उपोद्घात

इसके पहले कि मैं आपके सामने माणिक मुल्ला की अद्भुत निष्कर्षवादी प्रेम-कहानियों के रूप में लिखा गया यह 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' नामक उपन्यास प्रस्तुत करूँ, यह अच्छा होगा कि पहले आप यह जान लें कि माणिक मुल्ला कौन थे, वे हम लोगों को कहाँ मिले, कैसे उनकी प्रेम-कहानियाँ हम लोगों के सामने आईं, प्रेम के विषय में उनकी धारणाएँ और अनुभव क्या थे, तथा कहानी की टेकनीक के बारे में उनकी मौलिक उद्भावनाएँ क्या थीं।

'थीं' का प्रयोग मैं इसलिए कर रहा हूँ कि मुझे यह नहीं मालूम कि आजकल वे कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं, अब कभी उनसे मुलाकात होगी या नहीं; और अगर सचमुच वे लापता हो गए तो कहीं उनके साथ उनकी ये अद्भुत कहानियाँ भी लापता न हो जाएँ इसलिए मैं इन्हें आपके सामने पेश किए देता हूँ।

एक जमाना था जब वे हमारे मुहल्ले के मशहूर व्यक्ति थे। वहीं पैदा हुए, बड़े हुए, वहीं शोहरत पाई और वहीं से लापता हो गए। हमारा मुहल्ला काफी बड़ा है, कई हिस्सों में बँटा हुआ है और वे उस हिस्से के निवासी थे जो सबसे ज्यादा रंगीन और रहस्यमय है और जिसकी नई और पुरानी पीढ़ी दोनों के बारे में अजब-अजब-सी किंवदंतियाँ मशहूर हैं।

मुल्ला उनका उपनाम नहीं, जाति थी। कश्मीरी थे। कई पुश्तों से उनका परिवार यहाँ बसा हुआ था, वे अपने भाई और भाभी के साथ रहते थे। भाई

और भाभी का तबादला हो गया था और वे पूरे घर में अकेले रहते थे। इतनी सांस्कृतिक स्वाधीनता तथा इतनी कम्युनिज्म एक साथ उनके घर में थी कि यद्यपि हम लोग उनके घर से बहुत दूर रहते थे, लेकिन वहीं सबका अड्डा जमा करता था। हम सब उन्हें गुरुवत मानते थे और उनका भी हम सबों पर निश्छल प्रगाढ़ स्नेह था। वे नौकरी करते हैं या पढ़ते हैं, नौकरी करते हैं तो कहाँ, पढ़ते हैं तो क्या पढ़ते हैं - यह भी हम लोग कभी नहीं जान पाए। उनके कमरे में किताबों का नाम-निशान भी नहीं था। हाँ, कुछ अजब-अजब चीजें वहाँ थीं जो अमूमन दूसरे लोगों के कमरों में नहीं पाई जातीं। मसलन दीवार पर एक पुराने काले फ्रेम में एक फोटो जड़ा टँगा था : 'खाओ, बदन बनाओ!' एक ताख में एक काली बेंट का बड़ा-सा सुंदर चाकू रखा था, एक कोने में एक घोड़े की पुरानी नाल पड़ी थी और इसी तरह की कितनी ही अजीबोगरीब चीजें वहाँ थीं जिनका औचित्य हम लोग कभी नहीं समझ पाते थे। इनके साथ ही साथ हमें ज्यादा दिलचस्पी जिस बात में थी, वह यह कि जाड़ों में मूँगफलियाँ और गरमियों में खरबूजे वहाँ हमेशा मौजूद रहते थे और उसका स्वाभाविक परिणाम यह था कि हम लोग भी हमेशा वहाँ मौजूद रहते थे।

अगर काफी फुरसत हो, पूरा घर अपने अधिकार में हो, चार मित्र बैठे हों, तो निश्चित है कि घूम-फिर कर वार्ता राजनीति पर आ टिकेगी और जब राजनीति में दिलचस्पी खत्म होने लगेगी तो गोष्ठी की वार्ता 'प्रेम' पर आ टिकेगी। कम-से-कम मध्यवर्ग में तो इन दो विषयों के अलावा तीसरा विषय नहीं होता। माणिक मुल्ला का दखल जितना राजनीति में था उतना ही प्रेम में था, लेकिन जहाँ तक साहित्यिक वार्ता का प्रश्न था वे प्रेम को तरजीह दिया करते थे।

प्रेम के विषय में बात करते समय वे कभी-कभी कहावतों को अजब रूप में पेश किया करते थे और उनमें से न जाने क्यों एक कहावत अभी तक मेरे दिमाग में चस्पाँ है, हालाँकि उसका सही मतलब न मैं तब समझा था न अब! अक्सर प्रेम के विषय में अपने कड़वे-मीठे अनुभवों से हम लोगों का ज्ञानवर्धन करने के बाद खरबूजा काटते हुए कहते थे, 'प्यारे बंधुओ! कहावत में चाहे जो कुछ हो, प्रेम में खरबूजा चाहे चाकू पर गिरे चाहे चाकू खरबूजे पर, नुकसान हमेशा चाकू का होता है। अत: जिसका व्यक्तित्व चाकू की तरह तेज और पैना हो, उसे हर हालत में उस उलझन से बचना चाहिए।' ऐसी अन्य कहावतें थीं जो याद आने पर बाद में लिखूँगा।

लेकिन जहाँ तक कहानियों का प्रश्न था, उनकी निश्चित धारणा थी कि कहानियों की तमाम नस्लों में प्रेम कहानियाँ ही सबसे सफल साबित होती हैं, अत: कहानियों में रोमांस का अंश जरूर होना चाहिए। लेकिन साथ ही हमें अपनी दृष्टि संकुचित नहीं कर लेनी चाहिए और कुछ ऐसा चमत्कार करना चाहिए कि वे समाज के लिए कल्याणकारी अवश्य हों।

जब हम लोग पूछते थे कि यह कैसे संभव है कि कहानियाँ प्रेम पर लिखी जाएँ पर उनका प्रभाव कल्याणकारी हो, तब वे कहते थे कि यही तो चमत्कार है तुम्हारे माणिक मुल्ला में जो अन्य किसी कहानीकार में है ही नहीं।

यद्यपि उन्होंने उस समय तक एक भी कहानी लिखी नहीं थी, फिर भी कहानियों के विषय में उनका विशाल अध्ययन था (कम-से-कम हम लोगों को ऐसा ही लगता था) और उनका कहानी-कला पर पूर्ण अधिकार था।

कहानियों की टेकनीक के बारे में उनका सबसे पहला सिद्धांत था कि आधुनिक कहानी में आदि, मध्य या अंत, तीनों में से कोई-न-कोई तत्व अवश्य छूट जाता है। ऐसा नहीं होना चाहिए। उनका कहना था कि कहानी वही पूर्ण है जिसमें आदि में आदि हो, मध्य में मध्य हो और अंत में अंत हो। इनकी व्याख्या वे यों करते थे : कहानी का आदि वह है जिसके पहले कुछ न हो। बाद में मध्य हो, मध्य वह है जिसके पहले आदि हो बाद में अंत हो। अंत उसे कहते हैं जिसके पहले मध्य हो बाद में रद्दी की टोकरी हो।

कहानियों की टेकनीक के बारे में उनका दूसरा सिद्धांत यह था कि कहानियाँ चाहे छायावादी हों या प्रगतिवादी, ऐतिहासिक हों या अनैतिहासिक, समाजवादी हों या मुसलिमलीगी, किंतु उनसे कोई-न-कोई निष्कर्ष अवश्य निकलना चाहिए। वह निष्कर्ष समाज के लिए कल्याणकारी होना चाहिए ऐसा उनका निश्चित मत था और इसलिए यद्यपि उन्होंने जीवन भर कोई कहानी नहीं लिखी पर वे अपने को कथा-साहित्य में निष्कर्षवाद का प्रवर्तक मानते थे। कथा-शिल्प की पूरी प्रणाली वे इस प्रकार बताते थे :

कुछ पात्र लो, और एक निष्कर्ष पहले से सोच लो, जैसे... यानी जो भी निष्कर्ष निकालना हो, फिर अपने पात्रों पर इतना अधिकार रखो, इतना शासन रखो कि वे अपने-आप प्रेम के चक्र में उलझ जाएँ और अंत में वे उसी निष्कर्ष पर पहुँचें जो तुमने पहले से तय कर रखा है।

मेरे मन में अक्सर इन बातों पर शंकाएँ भी उठती थीं, पर निष्कर्षवाद के विषय में उन्होंने मुझे बताया कि हिंदी में बहुत-से कहानीकार इसीलिए

प्रसिद्ध हो गए हैं कि उनकी कहानी में कथानक चाहे लँगड़ाता हो, पात्र चाहे पिलपिले हों, लेकिन सामाजिक तथा राजनीतिक निष्कर्ष अद्भुत होते हैं।

मेरी दूसरी शंका कथावस्तु की प्रेम संबंधी अनिवार्यता के विषय में थी। मैं अक्सर सोचता था कि जिंदगी में अधिक-से-अधिक दस बरस ऐसे होते हैं जब हम प्रेम करते हैं। उन दस बरसों में खाना-पीना, आर्थिक संघर्ष, सामाजिक जीवन, पढ़ाई-लिखाई, घूमना-फिरना, सिनेमा और साप्ताहिक पत्र, मित्र-गोष्ठी इन सबों से जितना समय बचता है, उतने में हम प्रेम करते हैं। फिर इतना महत्व उसे क्यों दिया जाए? सैर-सपाटा, खोज, शिकार, व्यायाम, मोटर चलाना, रोजी-रोजगार, ताँगेवाले, इक्केवाले और पत्रों के संपादक, सैकड़ों विषय हैं जिन पर कहानियाँ लिखी जा सकती हैं, फिर आखिर प्रेम पर ही क्यों लिखी जाएँ?

जब मैंने माणिक मुल्ला से यह पूछा तो सहसा वे भावुक हो गए और बोले, 'तुम्हें बांग्ला आती है?' मैंने कहा, 'नहीं, क्यों?' तो गहरी साँस ले कर बोले, 'टैगोर का नाम तो सुना ही होगा! उन्होंने लिखा है, 'आमार माझारे जो आछे से गो कोनो विरहिणी नारी!' अर्थात मेरे मन के अंदर जो बसा है वह कोई विरहिणी नारी है। और वही विरहिणी नारी अपनी कथा कहा करती है - बार-बार तरह-तरह से।' और फिर अपने मत की व्याख्या करते हुए बोले कि विरहिणी नारियाँ भी कई भाँति की होती हैं - अनूढ़ा विरहिणी, ऊढ़ा विरहिणी, मुग्धा विरहिणी, प्रौढ़ा विरहिणी आदि -आदि, तथा विरह भी कई प्रकार के होते हैं - बाह्य-परिस्थितिजन्य, आंतरिक-मन:स्थितिजन्य इत्यादि। इन सबों पर कहानियाँ लिखी जा सकती हैं; और माणिक मुल्ला का

चमत्कार यह था कि जैसे बाजीगर मुँह से आम निकाल देता है वैसे ही वे इन कहानियों से सामाजिक कल्याण के निष्कर्ष निकाल देने में समर्थ थे।

हालाँकि माणिक मुल्ला के बारे में प्रकाश का मत था कि 'यार, हो न हो माणिक मुल्ला के बारे में भी हिंदी के अन्य कहानीकारों की तरह नारी के लिए कुछ 'ऑबसेशन' है!' पर यह वह कभी माणिक मुल्ला के सामने कहने का साहस नहीं करता था कि वे उसका सही-सही जवाब दे सकें और जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं आज तक उनके बारे में सही फैसला नहीं कर पाया हूँ। इसीलिए मैं ये कहानियाँ ज्यों-की-त्यों आपके सामने प्रस्तुत किए देता हूँ; ताकि आप स्वयं निर्णय कर लें। इसका नाम 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' क्यों रखा गया इसका स्पष्टीकरण भी अंत में मैंने कर दिया है।

हाँ, आप मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे कि इनकी शैली में बोलचाल के लहजे की प्रधानता है और मेरी आदत के मुताबिक उनकी भाषा रूमानी, चित्रात्मक, इंद्रधनुष और फूलों से सजी हुई नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि ये कहानियाँ माणिक मुल्ला की हैं, मैं तो केवल प्रस्तुतकर्ता हूँ, अत: जैसे उनसे सुनी थीं उन्हें यथासंभव वैसे ही प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

पहली दोपहर

(नमक की अदायगी)

अर्थात जमुना का नमक माणिक ने कैसे अदा किया

उन्होंने सबसे पहली कहानी एक दिन गरमी की दोपहर में सुनाई थी जब हम लोग लू के डर से कमरा चारों ओर से बंद करके, सिर के नीचे भीगी तौलिया रखे चुपचाप लेटे थे। प्रकाश और ओंकार ताश के पत्ते बाँट रहे थे और मैं अपनी आदत के मुताबिक कोई किताब पढ़ने की कोशिश कर रहा था। माणिक ने मेरी किताब छीन कर फेंक दी और बुजुर्गाना लहजे में कहा, 'यह लड़का बिलकुल निकम्मा निकलेगा। मेरे कमरे में बैठ कर दूसरों की कहानियाँ पढ़ता है। छिः, बोल कितनी कहानियाँ सुनेगा।' सभी उठ बैठे और माणिक मुल्ला से कहानी सुनाने का आग्रह करने लगे। अंत में माणिक मुल्ला ने एक कहानी सुनाई जिसमें उनके कथनानुसार उन्होंने इसका विश्लेषण किया था कि प्रेम नामक भावना कोई रहस्यमय, आध्यात्मिक या सर्वथा वैयक्तिक भावना न हो कर वास्तव में एक सर्वथा मानवीय सामाजिक भावना है, अत: समाज-व्यवस्था से अनुशासित होती है और उसकी नींव आर्थिक-संगठन और वर्ग-संबंध पर स्थापित है।

नियमानुसार पहले उन्होंने कहानी का शीर्षक बताया : 'नमक की अदायगी'। इस शीर्षक पर उपन्यास-सम्राट प्रेमचंद के 'नमक का दारोगा' का काफी प्रभाव मालूम पड़ता था पर कथावस्तु सर्वथा मौलिक थी। कहानी इस प्रकार थी -

माणिक मुल्ला के घर के बगल में एक पुरानी कोठी थी जिसके पीछे छोटा अहाता था। अहाते में एक गाय रहती थी, कोठी में एक लड़की। लड़की का नाम जमुना था, गाय का नाम मालूम नहीं। गाय बूढ़ी थी, रंग लाल था, सींग नुकीले थे। लड़की की उम्र पंद्रह साल की थी, रंग गेहुँआ था (बढ़िया पंजाबी गेहूँ) और स्वभाव मीठा, हँसमुख और मस्त। माणिक, जिनकी उम्र सिर्फ दस बरस की थी, उसे जमुनियाँ कह कर भागा करते थे और वह बड़ी होने के नाते जब कभी माणिक को पकड़ पाती थी तो इनके दोनों कान उमेठती और मौके-बेमौके चुटकी काट कर इनका सारा बदन लाल कर देती। माणिक मुल्ला निस्तार की कोई राह न पा कर चीखते थे, माफी माँगते थे और भाग जाते थे।

लेकिन जमुना के दो काम माणिक मुल्ला के सिपुर्द थे। इलाहाबाद से निकलनेवाली जितनी सस्ते किस्म की प्रेम-कहानियों की पत्रिकाएँ होती थीं वे जमुना उन्हीं से मँगवाती थी और शहर के किसी भी सिनेमाघर में अगर नई तसवीर आई तो उसकी गाने की किताब भी माणिक को खरीद लानी पड़ती थी। इस तरह जमुना का घरेलू पुस्तकालय दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था।

समय बीतते कितनी देर लगती है। कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते और सिनेमा के गीत याद करते-करते जमुना बीस बरस की हो गई और माणिक पंद्रह बरस के, और भगवान की माया देखो कि जमुना का ब्याह ही कहीं तय नहीं हुआ। वैसे बात चली। पास ही रहनेवाले महेसर दलाल के लड़के तन्ना के बारे में सारा मुहल्ला कहा करता था कि जमुना का ब्याह इसी से होगा, क्योंकि

तन्ना और जमुना में बहुत पटती थी, तन्ना जमुना की बिरादरी का भी था, हालाँकि कुछ नीचे गोत का था और सबसे बड़ी बात यह थी कि महेसर दलाल से सारा मुहल्ला डरता था। महेसर बहुत ही झगड़ालू, घमंडी और लंपट था, तन्ना उतना ही सीधा, विनम्र और सच्चरित्र; और सारा मुहल्ला उसकी तारीफ करता था।

लेकिन जैसा पहले कहा जा चुका है कि तन्ना थोड़े नीच गोत का था, और जमुना का खानदान सारी बिरादरी में खरे और ऊँचे होने के लिए प्रख्यात था, अत: जमुना की माँ की राय नहीं पड़ी। चूँकि जमुना के पिता बैंक में साधारण क्लर्क मात्र थे और तनख्वाह से क्या आता-जाता था, तीज-त्यौहार, मूड़न-देवकाज में हर साल जमा रकम खर्च करनी पड़ती थी अत: जैसा हर मध्यम श्रेणी के कुटुंब में पिछली लड़ाई में हुआ है, बहुत जल्दी सारा जमा रुपया खर्च हो गया और शादी के लिए कानी कौड़ी नहीं बची।

और बेचारी जमुना तन्ना से बातचीत टूट जाने के बाद खूब रोई, खूब रोई। फिर आँसू पोंछे, फिर सिनेमा के नए गीत याद किए। और इस तरह से होते-होते एक दिन बीस की उम्र को भी पार कर गई। और माणिक का यह हाल कि ज्यों-ज्यों जमुना बढ़ती जाए त्यों-त्यों वह इधर-उधर दुबली-मोटी होती जाए और ऐसी कि माणिक को भली भी लगे और बुरी भी। लेकिन एक उसकी बुरी आदत पड़ गई थी कि चाहे माणिक मुल्ला उसे चिढ़ाएँ या न चिढ़ाएँ वह उन्हें कोने-अतरे में पाते ही इस तरह दबोचती थी कि माणिक मुल्ला का दम घुटने लगता था और इसीलिए माणिक मुल्ला उसकी छाँह से कतराते थे।

लेकिन किस्मत की मार देखिए कि उसी समय मुहल्ले में धर्म की लहर चल पड़ी और तमाम औरतें जिनकी लड़कियाँ अनब्याही रह गई थीं, जिनके पति हाथ से बेहाथ हुए जा रहे थे, जिनके लड़के लड़ाई में चले गए थे, जिनके देवर बिक गए थे, जिन पर कर्ज हो गया था; सभी ने भगवान की शरण ली और कीर्तन शुरू हो गए और कंठियाँ ली जाने लगीं। माणिक की भाभी ने भी हनुमान-चौतरावाले ब्रह्मचारी से कंठी ली और नियम से दोनों वक्त भोग लगाने लगीं। और सुबह-शाम पहली टिक्की गऊ माता के नाम सेंकने लगीं। घर में गऊ थी नहीं अत: कोठी की बूढ़ी गाय को वह टिक्की दोनों वक्त खिलाई जाती थी। दोपहर को तो माणिक स्कूल चले जाते थे, दिन का वक्त रहता था अत: भाभी खुद चादर ओढ़ कर गाय को रोटी खिला आती थीं पर रात को माणिक मुल्ला को ही जाना पड़ता था।

गाय के अहाते के पास जाते हुए माणिक मुल्ला की रूह काँपती थी। जमुना का कान खींचना उन्हें अच्छा नहीं लगता था (और अच्छा भी लगता था!) अत: डर के मारे राम का नाम लेते हुए खुशी-खुशी वे गैया के अहाते की ओर जाया करते थे।

एक दिन ऐसा हुआ कि माणिक मुल्ला के यहाँ मेहमान आए और खाने-पीने में ज्यादा रात बीत गई। माणिक सो गए तो उनकी भाभी ने उन्हें जगा कर टिक्की दी और कहा, 'गैया को दे आओ।' माणिक ने काफी बहानेबाजी की लेकिन उनकी एक न चली। अंत में आँख मलते-मलते अहाते के पास पहुँचे तो क्या देखते हैं कि गाय के पास भूसेवाली कोठरी के दरवाजे पर कोई छाया बिलकुल कफन-जैसे सफेद कपड़े पहने खड़ी है। इनका कलेजा मुँह को आने लगा, पर इन्होंने सुन रखा था कि भूत-प्रेत के आगे आदमी को हिम्मत बाँधे

रहना चाहिए और उसे पीठ नहीं दिखलानी चाहिए वरना उसी समय आदमी का प्राणांत हो जाता है।

माणिक मुल्ला सीना ताने और काँपते हुए पाँवों को सँभाले हुए आगे बढ़ते गए और वह औरत वहाँ से अदृश्य हो गई। उन्होंने बार-बार आँखें मल कर देखा, वहाँ कोई नहीं था। उन्होंने संतोष की साँस ली, गाय को टिक्की दी और लौट चले। इतने में उन्हें लगा कि कोई उनका नाम ले कर पुकार रहा है। माणिक मुल्ला भली-भाँति जानते थे कि भूत-प्रेत मुहल्ले भर के लड़कों का नाम जानते हैं, अत: उन्होंने रुकना सुरक्षित नहीं समझा। लेकिन आवाज नजदीक आती गई और सहसा किसी ने पीछे से आ कर माणिक मुल्ला का कालर पकड़ लिया। माणिक मुल्ला गला फाड़ कर चीखने ही वाले थे किसी ने उनके मुँह पर हाथ रख दिया। वे स्पर्श पहचानते थे। जमुना!

लेकिन जमुना ने कान नहीं उमेठे। कहा, 'चलो आओ।' माणिक मुल्ला बेबस थे। चुपचाप चले गए और बैठ गए। अब माणिक भी चुप और जमुना भी चुप। माणिक जमुना को देखें, जमुना माणिक को देखे और गाय उन दोनों को देखे। थोड़ी देर बाद माणिक ने घबरा कर कहा, 'हमें जाने दो जमुना!' जमुना ने कहा, 'बैठो, बातें करो माणिक। बड़ा मन घबराता है।'

माणिक फिर बैठ गए। अब बात करें तो क्या करें? उनकी क्लास में उन दिनों भूगोल में स्वेज नहर, इतिहास में सम्राट जलालुद्दीन अकबर, हिंदी में 'इत्यादि की आत्मकथा' और अंगरेजी में 'रेड राइडिंग हुड' पढ़ाई जा रही थी, पर जमुना से इसकी बातें क्या करें! थोड़ी देर बाद माणिक ऊब कर बोले, 'हमें जाने दो जमुना, नींद लग रही है।'

'अभी कौन रात बीत गई है। बैठो!' कान पकड़ कर जमुना बोली। माणिक ने घबरा कर कहा, 'नींद नहीं लग रही है, भूख लग रही है।'

'भूख लग रही है! अच्छा, जाना मत! मैं अभी आई।' कह जमुना फौरन पिछवाड़े के सहन में से हो कर अंदर चली गई। माणिक की समझ में नहीं आया कि आज जमुना एकाएक इतनी दयावान क्यों हो रही है, कि इतने में जमुना लौट आई और आँचल के नीचे से दो-चार पुए निकालते हुए बोली, 'लो खाओ। आज तो माँ भागवत की कथा सुनने गई हैं।' और जमुना उसी तरह माणिक को अपनी तरफ खींच कर पुए खिलाने लगी।

एक ही पुआ खाने के बाद माणिक मुल्ला उठने लगे तो जमुना बोली, 'और खाओ।' तो माणिक मुल्ला ने उसे बताया कि उन्हें मीठे पुए अच्छे नहीं लगते, उन्हें बेसन के नमकीन पुए अच्छे लगते हैं।

'अच्छा कल तुम्हारे लिए बेसन के नमकीन पुए बना रखूँगी। कल आओगे? कथा तो सात रोज तक होगी।' माणिक ने संतोष की साँस ली। उठ खड़े हुए। लौट कर आए तो भाभी सो रही थीं। माणिक मुल्ला चुपचाप गऊमाता का ध्यान करते हुए सो गए।

दूसरे दिन माणिक मुल्ला ने चलने की कोशिश की, क्योंकि उन्हें जाने में डर भी लगता था और वे जाना भी चाहते थे। और न जाने कौन-सी चीज थी जो अंदर-ही-अंदर उनसे कहती थी, 'माणिक! यह बहुत बुरी बात है। जमुना अच्छी लड़की नहीं!' और उनके ही अंदर कोई दूसरी चीज थी जो कहती थी,

'चलो माणिक! तुम्हारा क्या बिगड़ता है। चलो देखें तो क्या है?' और इन दोनों से बड़ी चीज थी नमकीन बेसन का पुआ जिसके लिए नासमझ माणिक मुल्ला अपना लोक-परलोक दोनों बिगाड़ने के लिए तैयार थे।

उस दिन माणिक मुल्ला गए तो जमुना ने धानी रंग की वाइल की साड़ी पहनी थी, अरगंडी की पतली ब्लाउज पहनी थी, दो चोटियाँ की थीं, माथे पर चमकती हुई बिंदी लगाई थी। माणिक अकसर देखते थे कि जब लड़कियाँ स्कूल जाती थीं तो ऐसे सज-धज कर जाती थीं, घर में तो मैली धोती पहन कर फर्श पर बैठ कर बातें किया करती थीं, इसलिए उन्हें बड़ा ताज्जुब हुआ। बोले, 'जमुना, क्या अभी स्कूल से लौट रही हो?'

'स्कूल? स्कूल जाना तो माँ ने चार साल से छुड़ा दिया। घर में बैठी-बैठी या तो कहानियाँ पढ़ती हूँ या फिर सोती हूँ।' माणिक मुल्ला की समझ में नहीं आया कि जब दिन-भर सोना ही है तो इस सज-धज की क्या जरूरत है। माणिक मुल्ला आश्चर्य से मुँह खोले देखते रहे कि जमुना बोली, 'आँख फाड़-फाड़ कर क्या देख रहे हो! असली जरमनी की अरगंडी है। चाचा कलकत्ते से लाये थे, ब्याह के लिए रखी थी। ये देखो छोटे-छोटे फूल भी बने हैं।'

माणिक मुल्ला को बहुत आश्चर्य हुआ उस अरगंडी को छू कर जो कलकत्ते से आई थी, असली जरमनी की थी और जिस पर छोटे-छोटे फूल बने थे।

माणिक मुल्ला जब गाय को टिक्की खिला चुके तो जमुना ने बेसन के नमकीन पुए निकाले। मगर कहा, 'पहले बैठ जाओ तब खिलाएँगे।' माणिक चुपचाप चलने लगे। जमुना ने छोटी-सी बैटरी जला दी पर माणिक मारे डर

के काँप रहे थे। उन्हें हर क्षण यही लगता था कि भूसे में से अब साँप निकला, अब बिच्छू निकला, अब काँतर निकली। रुँधते गले से बोले, 'हम खाएँगे नहीं। हमें जाने दो।'

जमुना बोली, 'कैथे की चटनी भी है।' अब माणिक मुल्ला मजबूर हो गए। कैथा उन्हें विशेष प्रिय था। अंत में साँप-बिच्छू के भय का निरोध करके किसी तरह वे बैठ गए। फिर वही आलम कि जमुना को माणिक चुपचाप देखें और माणिक को जमुना और गाय इन दोनों को। जमुना बोली, 'कुछ बात करो, माणिक।' जमुना चाहती थी माणिक कुछ उसके कपड़े के बारे में बातें करे, पर जब माणिक नहीं समझे तो वह खुद बोली, 'माणिक, यह कपड़ा अच्छा है?' 'बहुत अच्छा है जमुना!' माणिक बोले। 'पर देखो, तन्ना है न, वही अपना तन्ना। उसी के साथ जब बातचीत चल रही थी तभी चाचा कलकत्ते से ये सब कपड़े लाए थे। पाँच सौ रुपए के कपड़े थे। पंचम बनिया से एक सेट गिरवी रख के कपड़े लाये थे, फिर बात टूट गई। अभी तो मैं उसी के यहाँ गई थी। अकेले मन घबराता है। लेकिन अब तो तन्ना बात भी नहीं करता। इसीलिए कपड़े भी बदले थे।'

'बात क्यों टूट गई जमुना?'

'अरे तन्ना बहुत डरपोक है। मैंने तो माँ को राजी कर लिया था पर तन्ना को महेसर दलाल ने बहुत डाँटा। तब से तन्ना डर गया और अब तो तन्ना ठीक से बोलता भी नहीं।' माणिक ने कुछ जवाब नहीं दिया तो फिर जमुना बोली, 'असल में तन्ना बुरा नहीं है पर महेसर बहुत कमीना आदमी है और जब से तन्ना की माँ मर गई तब से तन्ना बहुत दुखी रहता है।' फिर सहसा जमुना

ने स्वर बदल दिया और बोली, 'लेकिन फिर तन्ना ने मुझे आसा में क्यों रखा? माणिक, अब न मुझे खाना अच्छा लगता है न पीना। स्कूल जाना छूट गया। दिन-भर रोते-रोते बीतता है। हाँ, माणिक।' और उसके बाद वह चुपचाप बैठ गई। माणिक बोले, 'तन्ना बहुत डरपोक था। उसने बड़ी गलती की!' तो जमुना बोली, 'दुनिया में यही होता आया है!' और उदाहरण स्वरूप उसने कई कहानियाँ सुनाईं जो उसने पढ़ी थीं या चित्रपट पर देखी थीं।

माणिक उठे तो जमुना ने पूछा कि 'रोज आओगे न!' माणिक ने आना-कानी की तो जमुना बोली, 'देखो माणिक, तुमने नमक खाया है और नमक खा कर जो अदा नहीं करता उस पर बहुत पाप पड़ता है क्योंकि ऊपर भगवान देखता है और सब बही में दर्ज करता है।' माणिक विवश हो गए और उन्हें रोज जाना पड़ा और जमुना उन्हें बिठा कर रोज तन्ना की बातें करती रही।

'फिर क्या हुआ!' जब हम लोगों ने पूछा तो माणिक बोले, 'एक दिन वह तन्ना की बातें करते-करते मेरे कंधे पर सिर रख कर खूब रोई, खूब रोई और चुप हुई तो आँसू पोंछे और एकाएक मुझसे वैसी बातें करने लगी जैसी कहानियों में लिखी होती हैं। मुझे बड़ा बुरा लगा और सोचा अब कभी उधर नहीं जाऊँगा, पर मैंने नमक खाया था और ऊपर भगवान सब देखता है। हाँ, यह जरूर था कि जमुना के रोने पर मैं चाहता था कि उसे अपने स्कूल की बातें बताऊँ, अपनी किताबों की बातें बता कर उसका मन बहलाऊँ। पर वह आँसू पोंछ कर कहानियों-जैसी बातें करने लगी। यहाँ तक कि एक दिन मेरे मुँह से भी वैसी ही बातें निकल गईं।'

'फिर क्या हुआ?' हम लोगों ने पूछा।

'अजब बात हुई। असल में इन लोगों को समझना बड़ा मुश्किल है। जमुना चुपचाप मेरी ओर देखती रही और फिर रोने लगी। बोली, 'मैं बहुत खराब लड़की हूँ। मेरा मन घबराता था इसीलिए तुमसे बात करने आती हूँ, पर मैं तुम्हारा नुकसान नहीं चाहती। अब मैं नहीं आया करूँगी।' लेकिन दूसरे दिन जब मैं गया तो देखा, फिर जमुना मौजूद है।'

फिर माणिक मुल्ला को रोज जाना पड़ा। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन, पाँच दिन - यहाँ तक कि हम लोगों ने ऊब कर पूछा कि अंत में क्या हुआ तो माणिक मुल्ला बोले, 'कुछ नहीं, होता क्या? जब मैं जाता तो मुझे लगता कोई कह रहा है माणिक उधर मत जाओ यह बहुत खराब रास्ता है, पर मैं जानता था कि मेरा कुछ बस नहीं है। और धीरे-धीरे मैंने देखा कि न मैं वहाँ जाए बिना रह सकता था न जमुना आए बिना।'

'हाँ, यह तो ठीक है पर इसका अंत क्या हुआ?'

'अंत क्या हुआ?' माणिक मुल्ला ने ताने के स्वर में कहा, 'तब तो तुम लोग खूब नाम कमाओगे। अरे क्या प्रेम-कहानियों के दो-चार अंत होते हैं। एक ही तो अंत होता है - नायिका का विवाह हो गया, माणिक मुँह ताकते रह गए। अब इसी को चाहे जितने ढंग से कह लो।'

बहरहाल इतनी दिलचस्प कहानी का इतना साधारण अंत हम लोगों को पसंद नहीं आया।

फिर भी प्रकाश ने पूछा, 'लेकिन इससे यह कहाँ साबित हुआ कि प्रेम-भावना की नींव आर्थिक संबंधों पर है और वर्ग-संघर्ष उसे प्रभावित करता है।'

'क्यों? यह तो बिलकुल स्पष्ट है।' माणिक मुल्ला ने कहा, 'अगर हरेक के घर में गाय होती तो यह स्थिति कैसे पैदा होती? संपत्ति की विषमता ही इस प्रेम का मूल कारण है। न उनके घर गाय होती, न मैं उनके वहाँ जाता, न नमक खाता, न नमक अदा करना पड़ता।'

'लेकिन फिर इससे सामाजिक कल्याण के लिए क्या निष्कर्ष निकला?' हम लोगों ने पूछा।

'बिना निष्कर्ष के मैं कुछ नहीं कहता मित्रो! इससे यह निष्कर्ष निकला कि हर घर में एक गाय होनी चाहिए जिसमें राष्ट्र का पशुधन भी बढ़े, संतानों का स्वास्थ्य भी बने। पड़ोसियों का भी उपकार हो और भारत में फिर से दूध-घी की नदियाँ बहें।'

यद्यपि हम लोग आर्थिक आधारवाले सिद्धांत से सहमत नहीं थे पर यह निष्कर्ष हम सबों को पसंद आया और हम लोगों ने प्रतिज्ञा की कि बड़े होने पर एक-एक गाय अवश्य पालेंगे।

इस प्रकार माणिक मुल्ला की प्रथम निष्कर्षवादी प्रेम-कहानी समाप्त हुई।

अनध्याय

इस कहानी ने वास्तव में हम लोगों को प्रभावित किया था। गरमी के दिन थे। मुहल्ले के जिस हिस्से में हम लोग रहते उधर छतें बहुत तपती थीं, अत: हम सभी लोग हकीम जी के चबूतरे पर सोया करते थे।

रात को जब हम लोग लेटे तो नींद नहीं आ रही थी और रह-रह कर जमुना की कहानी हम लोगों के दिमाग में घूम जाती थी और कभी कलकत्ते की अरगंडी और कभी बेसन के पुए की याद करके हम लोग हँस रहे थे।

इतने में श्याम भी हाथ में एक बँसखट लिए और बगल में दरी-तकिया दबाए हुए आया। वह दोपहर की मजलिस में शामिल नहीं था अत: हम लोगों को हँसते देख उत्सुकता हुई और उसने पूछा कि माणिक मुल्ला ने कौन-सी कहानी हम लोगों को बताई है। जब हम लोगों ने जमुना की कहानी उसे बताई तो आश्चर्य से देखा गया कि बजाय हँसने के वह उदास हो गया। हम लोगों ने एक स्वर से पूछा कि 'कहो श्याम, इस कहानी को सुन कर दुखी क्यों हो गए? क्या तुम जमुना को जानते थे?' तो श्याम रुँधे हुए गले से बोला, 'नहीं, मैं जमुना को नहीं जानता, लेकिन आज नब्बे प्रतिशत लड़कियाँ जमुना की परिस्थिति में हैं। वे बेचारी क्या करें! तन्ना से उसकी शादी हो नहीं पाई, उसके बाप दहेज जुटा नहीं पाए, शिक्षा और मन-बहलाव के नाम पर उसे मिलीं 'मीठी कहानियाँ', 'सच्ची कहानियाँ', 'रसभरी कहानियाँ' तो बेचारी और कर ही क्या सकती थी। यह तो रोने की बात है, इसमें हँसने की क्या बात! दूसरे पर हँसना नहीं चाहिए। हर घर में मिट्टी के चूल्हे होते हैं', आदि-आदि।

श्याम की बात सुन कर हम लोगों का जी भर आया और धीरे-धीरे हम लोग सो गए।

दूसरी दोपहर

घोड़े की नाल

(अर्थात किस प्रकार घोड़े की नाल सौभाग्य का लक्षण सिद्ध हुई?)

दूसरे दिन खा-पी कर हम लोग फिर उस बैठक में एकत्र हुए और हम लोगों के साथ श्याम भी आया। जब हम लोगों ने माणिक मुल्ला को बताया कि श्याम जमुना की कहानी को सुन कर रोने लगा था तो श्याम झेंप कर बोला, 'मैं कहाँ रो रहा था?' माणिक मुल्ला हँसे और बोले कि 'हमारी जिंदगी में जरा-सी पर्त उखाड़ कर देखो तो हर तरफ इतनी गंदगी और कीचड़ छिपा हुआ है कि सचमुच उस पर रोना आता है। लेकिन प्यारे बंधुओ, मैं तो इतना रो चुका हूँ कि अब आँख में आँसू आता ही नहीं, अत: लाचार हो कर हँसना पड़ता है। एक बात और है - जो लोग भावुक होते हैं और सिर्फ रोते हैं, वे रो-धो कर रह जाते हैं, पर जो लोग हँसना सीख लेते हैं वे कभी-कभी हँसते-हँसते उस जिंदगी को बदल भी डालते हैं।'

फिर खरबूजा काटते हुए बोले, 'हटाओ जी इन बातों को। लो आज जौनपुरी खरबूजे हैं। इनकी महक तो देखो। गुलाब मात है। क्या है श्याम? क्यों मुँह लटकाए बैठे हो? अजी मुँह लटकाने से क्या होता है! मैं अभी तुम्हें बताऊँगा कि जमुना का विवाह कैसे हुआ?'

हम लोग तो यह सुनना ही चाहते थे अत: एक स्वर में बोल उठे, 'हाँ-हाँ, आज जमुना के विवाह की कहानी रहे।' पर माणिक मुल्ला बोले, 'नहीं, पहले खरबूजे के छिलके बाहर फेंक आओ।' जब हम लोगों ने कमरा साफ कर दिया

तो माणिक मुल्ला ने सबको आराम से बैठ जाने का आदेश दिया, ताख पर से घोड़े की पुरानी नाल उठा लाए और उसे हाथ में ले कर ऊपर उठा कर बोले, 'यह क्या है?'

'घोड़े की नाल।' हम लोगों ने एक स्वर में उत्तर दिया।

'ठीक!' माणिक मुल्ला ने जादूगर की तरह नाल को आश्चर्यजनक तेजी से उँगली पर नचाते हुए कहा, 'यह नाल जमुना के वैवाहिक जीवन का एक महत्वपूर्ण स्मृति-चिह्न है। तुम लोग पूछोगे, कैसे? वह मैं पूरे विस्तार में बताता हूँ।'

और माणिक मुल्ला ने विस्तार में जो बताया वह संक्षेप में इस प्रकार है :

जब बहुत दिनों तक जमुना की शादी नहीं तय हो पाई और निराश हो कर उसकी माँ पूजा-पाठ करने लगीं और पिता बैंक में ओवरटाइम करने लगे तो एक दिन अकस्मात उनके घर दूर की एक रिश्तेदार रामो बीबी आईं और उन्होंने बीज छीलते हुए कहा, 'हरे राम-राम! बिटिया की बाढ़ तो देखो। जैसन नाम तैसन करनी। भादों की जमुना अस फाटी पड़त है।' और फिर झुक कर माँ के कान में धीमे से बोलीं, 'ए कर बियाह-उआह कहूँ नाहीं तय कियो?' जब माँ ने बताया कि बिरादरीवाले दहेज बहुत माँग रहे हैं, कहीं जात-परजात में दे देने से तो अच्छा है कि माँ-बेटी गले से रस्सी बाँध कर कुएँ में गिर पड़ें तो रामो बीबी फौरन तमक कर बोलीं, 'ऐ हे! कैसी कुभाखा जिभ्या से निकालत हो जमुना की अम्मा! कहत कुच्छौ नाहीं लगत! और कुएँ में गिरैं तुम्हारे दुश्मन, कुएँ में गिरैं अड़ोस-पड़ोसवाले, कुएँ में गिरैं तन्ना और महेसर

दलाल, दूसरे का सुख देख के जिनके हिया फाटत हैं।' बहरहाल हुआ यह कि रामो बीबी ने फौरन अपनी कुरती में से अपने भतीजे की कुंडली निकाल कर दी और कहा, 'बखत पड़े पर आदमियै आदमी के काम आवत है। जो हारेगाढ़े कबौ काम न आवै ऊ आदमी के रूप में जनावर है। अब ई हमार भतीजा है। घर का अकेला, न सास न ससुर, न ननद न जिठानी, कौनो किचाइन नाहीं है घर में। नाना ओके नाम जागीर लिख गए हैं। घर में घोड़ा है, ताँगा है। पुराना नामी खानदान है। लड़की रानी-महारानी अस बिलसिहै।'

जब शाम को जमुना की माँ ने यह खबर बाप को दी तो उसने सामने से थाली खिसका दी और कहा, 'उसकी दो बीवियाँ मर चुकी हैं। तेहाजू है लड़का। मुझसे चार-पाँच बरस छोटा होगा।'

'थाली काहे खिसका दी? न खाओ मेरी बला से। क्यों नहीं ढूँढ़ के लाते? जब लड़की की उमर मेरे बराबर हो रही है तो लड़का कहाँ से ग्यारह साल का मिल जाएगा।' इस बात को ले कर पति और पत्नी में बहुत कहा-सुनी हुई। अंत में जब पत्नी पान बना कर ले गई और पति को समझा कर कहा, 'लड़का तिहाजू है तो क्या हुआ। मरद और दीवार - जितना पानी खाते हैं उतना पुख्ता होते हैं।'

जब जमुना के द्वारे बारात चढ़ी तो माणिक मुल्ला ने देखा और उन्होंने उस पुख्ता दीवार का जो वर्णन दिया उससे हम लोग लोट-पोट हो गए। जमुना ने उसे देखा तो बहुत रोई, जेवर चढ़ा तो बहुत खुश हुई, चलने लगी तो यह आलम था कि आँखों से आँसू नहीं थमते थे और हृदय में उमंगें नहीं थमती थीं।

जब जमुना लौट कर मैके आई तो सभी सखियों के यहाँ गई। अंग-अंग पर जेवर लदा था, रोम-रोम पुलकित था और पति की तारीफ करते जबान नहीं थकती थी। 'अरी कम्मो, वो तो इतने सीधे हैं कि जरा-सी तीन-पाँच नहीं जानते। ऐ, जैसे छोटे-से बच्चे हों। पहली दोनों के मैकेवाले सारी जायदाद लूट ले गए, नहीं तो धन फटा पड़ता था। मैंने कहा अब तुम्हारे साले-साली आवेंगे तो बाहर ही से विदा करूँगी, तुम देखते रहना। तो बोले, 'तुम घर की मालकिन हो। सुबह-शाम दाल-रोटी दे दो बस, मुझे क्या करना है।' चौबीसों घंटा मुँह देखते रहते हैं। जरा-सी कहीं गई - बस सुनती हो, ओ जी सुनती हो, अजी कहाँ गई! मेरी तो नाक में दम है कम्मो! मुहल्ला-पड़ोसवाले देख-देख कर जलते हैं। मैंने कहा, जितना जलोगे उतना जलाऊँगी। मैं भी तब दरवाजा खोलती हूँ जब धूप सिर पर चढ़ आती है। और खयाल इतना रखते हैं कि मैं आई तो ढाई सौ रुपए जबरदस्ती ट्रंक में रख दिए। कहा, हमारी कसम है जो इसे न ले जाओ।'

लेकिन जमुना को जल्दी ही ससुराल लौट जाना पड़ा, क्योंकि एक दिन उसके बाप बहुत परेशान हालत में रात को आठ बजे बैंक से लौटे और बताया कि हिसाब में एक सौ सत्ताईस रुपया तेरह आने की कमी पड़ गई है, अगर कल सुबह जाते ही उन्होंने जमा न कर दिया तो हिरासत में ले लिए जाएँगे। यह सुनते ही घर में सियापा छा गया और जमुना ने झट ट्रंक से नोट की गड्डी निकाल कर छप्पर में खोंस दी और जब माँ ने कहा, 'बेटी उधार दे दो!' तो ताली माँ के हाथ में दे कर बोली, 'देख लो न, संदूक में दो-चार दुअन्नियाँ पड़ी होंगी।' लेकिन जमुना ने सोचा आज बला टल गई तो टल गई, आखिर बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी। इतना तो पहले लुट गया है, अब अगर

जमुना भी माँ-बाप पर लुटा दे तो अपने बाल-बच्चों के लिए क्या बचाएगी? अरे माँ-बाप कै दिन के हैं? उसे सहारा तो उसके बच्चे ही देंगे न!

यहाँ पर माणिक मुल्ला कहानी कहते-कहते रुक गए और हम लोगों की ओर देख कर बोले, 'प्यारे मित्रो! हमेशा याद रखो कि नारी पहले माँ होती है तब और कुछ! इसका जन्म ही इसलिए होता है कि वह माँ बने। सृष्टि का क्रम आगे बढ़ावे। यही उसकी महानता है। तुमने देखा कि जमुना के मन में पहले अपने बच्चों का खयाल आया।'

अस्तु। जमुना अपने भावी बाल-बच्चों का खयाल करके अपनी ससुराल चली गई और सुख से रहने लगी। सच पूछो तो यहीं जमुना की कहानी का खात्मा होता है।

'लेकिन आपने तो घोड़े की नाल दिखाई थी। इसका तो जिक्र आया ही नहीं?'

'ओह! मैंने सोचा देखूँ तुम लोग कितने ध्यान से सुन रहे हो।' और तब उन्होंने उस नाल की घटना भी बताई।

असल में जमुना के पति तिहाजू यानी पुख्ता दीवार, पर उनमें और जमुना में उतना ही अंतर था जितना पलस्तर उखड़ी हुई पुरानी दीवार और लिपे-पुते तुलसी के चौतरे में। इधर-उधर के लोग इधर-उधर की बातें करते थे पर जमुना तन-मन से पति-परायणा थी। पति भी जहाँ उसके गहने-कपड़े का ध्यान रखते थे वहीं उसे भजनामृत, गंगा-माहात्म्य, गुटका रामायण आदि ग्रंथ-रत्न ला कर दिया करते थे। और वह भी उसमें 'उत्तम के अस बस मन

माहीं' आदि पढ़ कर लाभान्वित हुआ करती थी। होते-होते यह हुआ कि धर्म का बीज उसके मन में जड़ पकड़ गया और भजन-कीर्तन, कथा-सत्संग में उसका चित रम गया और ऐसा रमा कि सुबह-शाम, दोपहर-रात वह दीवानी घूमती रहे। रोज उसके यहाँ साधु-संतों का भोजन होता रहे और साधु-संत भी ऐसे तपस्वी और रूपवान कि मस्तक से प्रकाश फूटता था।

वैसे उसकी भक्ति बहुत निष्काम थी किंतु जब साधु-संत उसे आशीर्वाद दें कि 'संतानवती भव' तो वह उदास हो जाया करे। उसके पति उसे बहुत समझाया करते थे, 'अजी यह तो भगवान की माया है इसमें उदास क्यों होती हो?' लेकिन संतान की चिंता उन्हें भी थी क्योंकि इतनी बड़ी जागीर के जमींदार का वारिस कोई नहीं था। अंत में एक दिन वे और जमुना दोनों एक ज्योतिषी के यहाँ गए जिसने जमुना को बताया कि उसे कार्तिक-भर सुबह गंगा नहा कर चंडी देवी को पीले फूल और ब्राह्मणों को चना, जौ और सोने का दान करना चाहिए।

जमुना इस अनुष्ठान के लिए तत्काल राजी हो गई। लेकिन इतनी सुबह किसके साथ जाए! जमुना ने पति (जमींदार साहब) से कहा कि वे साथ चला करें पर वे ठहरे बूढ़े आदमी, सुबह जरा-सी ठंडी हवा लगते ही उन्हें खाँसी का दौरा आ जाता था। अंत में यह तय हुआ कि रामधन ताँगेवाला शाम को जल्दी छुट्टी लिया करेगा और सुबह चार बजे आ कर ताँगा जोत दिया करेगा।

जमुना नित्य नियम से नहाने जाने लगी। कार्तिक में काफी सर्दी पड़ने लगती है और घाट से मंदिर तक उसे केवल एक पतली रेशमी धोती पहन

कर फूल चढ़ाने जाना पड़ता था। वह थर-थर थर-थर काँपती थी। एक दिन मारे सर्दी के उसके हाथ-पैर सुन्न पड़ गए। और वह वहीं ठंडी बालू पर बैठ गई और यह कहा कि रामधन अगर उसे समूची उठा कर ताँगे पर न बैठा देता तो वह वहीं बैठी-बैठी ठंड से गल जाती।

अंत में रामधन से न देखा गया। उसने एक दिन कहा, 'बहूजी, आप काहे जान देय पर उतारू हौ। ऐसन तपिस्या तो गौरा माइयो नैं करिन होइहैं। बड़े-बड़े जोतसी का कहा कर लियो अब एक गरीब मनई का भी कहा कै लेव!' जमुना के पूछने पर उसने बताया, जिस घोड़े के माथे पर सफेद तिलक हो, उसके अगले बाएँ पैर की घिसी हुई नाल चंद्र-ग्रहण के समय अपने हाथ से निकाल कर उसकी अँगूठी बनवा कर पहन ले तो सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं।

लेकिन जमुना को यह स्वीकार नहीं हुआ क्योंकि पता नहीं चंद्र-ग्रहण कब पड़े। रामधन ने बताया कि चंद्र-ग्रहण दो-तीन दिन बाद ही है। लेकिन कठिनाई यह है कि नाल अभी नया लगवाया है, वह तीन दिन के अंदर कैसे घिसेगा और नया कुछ प्रभाव नहीं रखता।

'तो फिर क्या हो, रामधन? तुम्हीं कोई जुगत बताओ!'

'मालकिन, एक ही जुगत है।'

'क्या?'

'ताँगा रोज कम-से-कम बारह मील चले। लेकिन मालिक कहीं जाते नहीं। अकेले मुझे ताँगा ले नहीं जाने देंगे। आप चलें तो ठीक रहे।'

'लेकिन हम बारह मील कहाँ जाएँगे?'

'क्यों नहीं सरकार! आप सुबह जरा और जल्दी दो-ढाई बजे निकल चलें! गंगापार पक्की सड़क है, बारह मील घुमा कर ठीक टाइम पर हाजिर कर दिया करूँगा। तीन दिन की ही तो बात है।'

जमुना राजी हो गई और तीन दिन तक रोज ताँगा गंगापार चला जाया करता था। रामधन का अंदाज ठीक निकला और तीसरे दिन चंद्र-ग्रहण के समय नाल उतरवा कर अँगूठी बनवाई गई और अँगूठी का प्रताप देखिए कि जमींदार साहब के यहाँ नौबत बजने लगी और नर्स ने पूरे एक सौ रुपए की बख्शीश ली।

जमींदार बेचारे वृद्ध हो चुके थे और उन्हें बहुत कष्ट था, वारिस भी हो चुका था अत: भगवान ने उन्हें अपने दरबार में बुला दिया। जमुना पति के बिछोह में धाड़ें मार-मार कर रोई, चूड़ी-कंगन फोड़ डाले, खाना-पीना छोड़ दिया। अंत में पड़ोसियों ने समझाया कि छोटा बच्चा है, उसका मुँह देखना चाहिए। जो होना था सो हो गया। काल बली है। उस पर किसका बस चलता है! पड़ोसियों के बहुत समझाने पर जमुना ने आँसू पोंछे। घर-बार सँभाला। इतनी बड़ी कोठी थी, अकेले रहना एक विधवा महिला के लिए अनुचित था, अत: उसने रामधन को एक कोठरी दी और पवित्रता से जीवन व्यतीत करने लगी।

जमुना की कहानी खत्म हो चुकी थी। लेकिन हम लोगों की शंका थी कि माणिक मुल्ला को यह घिसी नाल कहाँ से मिली, उसकी तो अँगूठी बन चुकी थी। पूछने पर मालूम हुआ कि एक दिन कहीं रेल सफर में माणिक मुल्ला को रामधन मिला। सिल्क का कुरता, पान का डब्बा, बड़े ठाठ थे उसके! माणिक मुल्ला को देखते ही उसने अपने भाग्योदय की सारी कथा सुनाई और कहा कि सचमुच घोड़े की नाल में बड़ी तासीर होती है। और फिर उसने एक नाल माणिक मुल्ला के पास भेज दी थी, यद्यपि उन्होंने उसकी अँगूठी न बनवा कर उसे हिफाजत से रख लिया।

कहानी सुना कर माणिक मुल्ला श्याम की ओर देख कर बोले, 'देखा श्याम, भगवान जो कुछ करता है भले के लिए करता है। आखिर जमुना को कितना सुख मिला। तुम व्यर्थ में दुखी हो रहे थे? क्यों?'

श्याम ने प्रसन्न हो कर स्वीकार किया कि वह व्यर्थ में दुखी हो रहा था। अंत में माणिक मुल्ला बोले, 'लेकिन अब बताओ इससे निष्कर्ष क्या निकला?'

हम लोगों में से जब कोई नहीं बता सका तो उन्होंने बताया, इससे यह निष्कर्ष निकला कि दुनिया का कोई भी श्रम बुरा नहीं। किसी भी काम को नीची निगाह से नहीं देखना चाहिए चाहे वह ताँगा हाँकना ही क्यों न हो?

हम सबों को इस कहानी का यह निष्कर्ष बहुत अच्छा लगा और हम सभी ने शपथ ली कि कभी किसी प्रकार के ईमानदारी के श्रम को नीची निगाह से न देखेंगे चाहे वह कुछ भी क्यों न हो।

इस तरह माणिक मुल्ला की दूसरी निष्कर्षवादी कहानी समाप्त हुई।

अनध्याय

जमुना की जीवन-गाथा समाप्त हो चुकी थी और हम लोगों को उसके जीवन का ऐसा सुखद समाधान देख कर बहुत संतोष हुआ। ऐसा लगा कि जैसे सभी रसों की परिणति शांत या निर्वेद में होती है, वैसे ही उस अभागिन के जीवन के सारे संघर्ष और पीड़ा की परिणति मातृत्व से प्लावित, शांत, निष्कंप दीपशिखा के समान प्रकाशमान, पवित्र, निष्कलंक वैधव्य में हुई।

रात को जब हम लोग हकीम जी के चबूतरे पर अपनी-अपनी खाट और बिस्तरा ले कर एकत्र हुए तो जमुना की जीवन-गाथा हम सबों के मस्तिष्क पर छाई हुई थी और उसको ले कर जो बातचीत तथा वाद-विवाद हुआ उसका नाटकीय विवरण इस प्रकार है :

मैं : (खाट पर बैठ कर, तकिए को उठा कर गोद में रखते हुए) भई कहानी बहुत अच्छी रही।

ओंकार : (जम्हाई लेते हुए) रही होगी।

प्रकाश : (करवट बदल कर) लेकिन तुम लोगों ने उसका अर्थ भी समझा?

श्याम : (उत्साह से) क्यों, उसमें कौन कठिन भाषा थी?

प्रकाश : यही तो माणिक मुल्ला की खूबी है। अगर जरा-सा सचेत हो कर उनकी बात तुम समझते नहीं गए तो फौरन तुम्हारे हाथ से तत्व निकल

जाएगा, हलका-फुलका भूसा हाथ आएगा। अब यह बताओ कि कहानी सुन कर क्या भावना उठी तुम्हारे मन में? तुम बताओ!

मैं : (यह समझ कर कि ऐसे अवसर पर थोड़ी आलोचना करना विद्‌वत्ता का परिचायक है) भई, मेरे तो यही समझ में नहीं आया कि माणिक मुल्ला ने जमुना-जैसी नायिका की कहानी क्यों कही? शकुंतला-जैसी भोली-भाली या राधा-जैसी पवित्र नायिका उठाते, या बड़े आधुनिक बनते हैं तो सुनीता-जैसी साहसी नायिका उठाते या देवसेना, शेखर की शशी-वशी तमाम टाइप मिल सकते थे।

प्रकाश : (सुकरात की-सी टोन में) लेकिन यह बताओ कि जिंदगी में अधिकांश नायिकाएँ जमुना-जैसी मिलती हैं या राधा और सुधा और गेसू और सुनीता और देवसेना-जैसी?

मैं : (चालाकी से अपने को बचाते हुए) पता नहीं! मेरा नायिकाओं के बारे में कोई अनुभव नहीं। यह तो आप ही बता सकते हैं।

श्याम : भाई, हमारे चारों ओर दुर्भाग्य से नब्बे प्रतिशत लोग तो जमुना और रामधन की तरह के होते हैं, पर इससे क्या! कहानीकार को शिवम का चित्रण करना चाहिए।

प्रकाश : यह तो ठीक है। पर अगर किसी जमी हुई झील पर आधा इंच बरफ और नीचे अथाह पानी और वहीं एक गाइड खड़ा है जो उस पर से आनेवालों

को आधा इंच की तो सूचना दे देता है और नीचे के अथाह पानी की खबर नहीं देता तो वह राहगीरों को धोखा देता है या नहीं?

मैं : क्यों नहीं?

प्रकाश : और अगर वे राहगीर बरफ टूटने पर पानी में डूब जाएँ तो इसका पाप गाइड पर पड़ेगा न!

श्याम : और क्या?

प्रकाश : बस, माणिक मुल्ला भी तुम्हारा ध्यान उस अथाह पानी की ओर दिला रहे हैं जहाँ मौत है, अँधेरा है, कीचड़ है, गंदगी है। या तो दूसरा रास्ता बनाओ नहीं तो डूब जाओ। लेकिन आधा इंच ऊपर जमी बरफ कुछ काम न देगी। एक ओर नए लोगों का यह रोमानी दृष्टिकोण, यह भावुकता, दूसरी ओर बूढ़ों का यह थोथा आदर्श और झूठी अवैज्ञानिक मर्यादा सिर्फ आधी इंच बरफ है, जिसने पानी की खूँखार गहराई को छिपा रखा है।

मैं :

ओंकार : (ऊब जाते हैं, सोचते हैं कब यह लेक्चर बंद हो।)

प्रकाश : (उत्साह से कहता जाता है) जमुना निम्न-मध्यवर्ग की भयानक समस्या है। आर्थिक नींव खोखली है। उसकी वजह से विवाह, परिवार, प्रेम -

सभी की नींवें हिल गई हैं। अनैतिकता छाई हुई है। पर सब उस ओर से आँखें मूँदे हैं। असल में पूरी जिंदगी की व्यवस्था बदलनी होगी!

मैं : (ऊब कर जम्हाई लेता हूँ।)

प्रकाश : क्यों? नींद आ रही है तुम्हें? मैंने कै बार तुमसे कहा कि कुछ पढ़ो-लिखो। सिर्फ उपन्यास पढ़ते रहते हो। गंभीर चीजें पढ़ो। समाज का ढाँचा, उसकी प्रगति, उसमें अर्थ, नैतिकता, साहित्य का स्थान...

मैं : (बात काट कर) मैंने क्या पढ़ा नहीं? तुम्हीं ने पढ़ा है? (यह देख कर कि प्रकाश की विद्वत्ता का रोब लोगों पर जम रहा है, मैं क्यों पीछे रहूँ) मैं भी इसकी मार्क्सवादी व्याख्या दे सकता हूँ -

प्रकाश : क्या? क्या व्याख्या दे सकते हो?

मैं : (अकड़ कर) मार्क्सवादी!

ओंकार : अरे यार रहने भी दो!

श्याम : मुझे नींद आ रही है।

मैं : देखिए, असल में इसकी मार्क्सवादी व्याख्या इस तरह हो सकती है। जमुना मानवता का प्रतीक है, मध्यवर्ग (माणिक मुल्ला) तथा सामंतवर्ग

(जमींदार) उसका उद्धार करने में असफल रहे; अंत में श्रमिकवर्ग (रामधन) ने उसको नई दिशा सुझाई!

प्रकाश : क्या? (क्षण-भर स्तब्ध। फिर माथा ठोंक कर) बेचारा मार्क्सवाद भी ऐसा अभागा निकला कि तमाम दुनिया में जीत के झंडे गाड़ आया और हिंदुस्तान में आ कर इसे बड़े-बड़े राहु ग्रस गए। तुम ही क्या, उसे ऐसे-ऐसे व्याख्याकार यहाँ मिले हैं कि वह भी अपनी किस्मत को रोता होगा। (जोरों से हँसता है, मैं अपनी हँसी उड़ते देख कर उदास हो जाता हूँ।)

हकीम जी की पत्नी : (नेपथ्य से) मैं कहती हूँ यह चबूतरा है या सब्जी मंडी। जिसे देखो खाट उठाए चला आ रहा है। आधी रात तक चख-चख चख-चख! कल से सबको निकालो यहाँ से।

हकीमजी : (नेपथ्य से काँपती हुई बूढ़ी आवाज) अरे बच्चे हैं। हँस-बोल लेने दे। तेरे अपने बच्चे नहीं हैं फिर दूसरों को क्यों खाने दौड़ती है... (हम सब पर सकता छा जाता है। मैं बहुत उदास हो कर लेट जाता हूँ। नीम पर से नींद की परियाँ उतरती हैं, पलकों पर छम-छम छम-छम नृत्य कर)।

(यवनिका-पतन)

तीसरी दोपहर

(शीर्षक माणिक मुल्ला ने नहीं बताया)

हम लोग सुबह सो कर उठे तो देखा कि रात ही रात सहसा हवा बिलकुल रुक गई है और इतनी उमस है कि सुबह पाँच बजे भी हम लोग पसीने से तर थे। हम लोग उठ कर खूब नहाए मगर उमस इतनी भयानक थी कि कोई भी साधन काम न आया। पता नहीं ऐसी उमस इस शहर के बाहर भी कहीं होती है या नहीं; पर यहाँ तो जिस दिन ऐसी उमस होती है उस दिन सभी काम रुक जाते हैं। सरकारी दफ्तरों में क्लर्क काम नहीं कर पाते, सुपरिंटेंडेंट बड़े बाबुओं को डाँटते हैं, बड़े बाबू छोटे बाबुओं पर खीज उतारते हैं, छोटे बाबू चपरासियों से बदला निकालते हैं और चपरासी गालियाँ देते हुए पानी पिलानेवालों से, भिश्तियों से और मालियों से उलझ जाते हैं; दुकानदार माल न बेच कर ग्राहकों को खिसका देते हैं और रिक्शावाले इतना किराया माँगते हैं कि सवारियाँ परेशान हो कर रिक्शा न करें। और इन तमाम सामाजिक उथल-पुथल के पीछे कोई ऐतिहासिक द्‍वंद्‍वात्मक प्रगति का सिद्‍धांत न हो कर केवल तापमान रहता है - टेंपरेचर, उमस, एक-सौ बारह डिगरी फारिनहाइट!

लेकिन इस उमस के बावजूद माणिक मुल्ला की कहानियाँ सुनने का लोभ हम लोगों से छूट नहीं पाता था अत: हम सबके-सब नियत समय पर वहीं इकट्‍ठा हुए और मिलने पर सबमें यही अभिवादन हुआ - 'आज बहुत उमस है!'

'हाँ जी, बहुत उमस है; ओफ-फोह!'

सिर्फ प्रकाश जब आया और उससे सबने कहा कि आज बहुत उमस है तो फलसफा छाँटते हुए अफलातून की तरह मुँह बना कर बोला (मेरी इस झल्लाहट-भरी टिप्पणी के लिए क्षमा करेंगे क्योंकि पिछली रात उसने मार्क्सवाद के सवाल पर मुझे नीचा दिखाया था और सच्चे संकीर्ण मार्क्सवादियों की तरह से झल्ला उठा था और मैंने तय कर लिया था कि वह सही बात भी करेगा तो मैं उसका विरोध करूँगा), बहरहाल प्रकाश बोला, 'भाईजी, उमस हम सभी की जिंदगी में छाई हुई है, उसके सामने तो यह कुछ नहीं है। हम सभी निम्नमध्य श्रेणी के लोगों की जिंदगी में हवा का एक ताजा झोंका नहीं। चाहे दम घुट जाए पर पत्ता नहीं हिलता, धूप जिसे रोशनी देना चाहिए हमें बुरी तरह झुलसा रही है और समझ में नहीं आता कि क्या करें। किसी-न-किसी तरह नई और ताजी हवा के झोंके चलने चाहिए। चाहे लू के ही झोंके क्यों न हों।'

प्रकाश की इस मूर्खता-भरी बात पर कोई कुछ नहीं बोला। (मेरे झूठ के लिए क्षमा करें क्योंकि माणिक ने इस बात की जोर से ताईद की थी, पर मैंने कह दिया न कि मैं अंदर-ही-अंदर चिढ़ गया हूँ!)

खैर, तो माणिक मुल्ला बोले कि, 'जब मैं प्रेम पर आर्थिक प्रभाव की बात करता हूँ तो मेरा मतलब यह रहता है कि वास्तव में आर्थिक ढाँचा हमारे मन पर इतना अजब-सा प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएँ उससे स्वाधीन नहीं हो पातीं और हम-जैसे लोग जो न उच्चवर्ग के हैं, न निम्नवर्ग के, उनके यहाँ रुढ़ियाँ, परंपराएँ, मर्यादाएँ भी ऐसी पुरानी और विषाक्त हैं कि कुल मिला कर हम सभी पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हम यंत्र-मात्र रह जाते

हैं हमारे अंदर उदार और ऊँचे सपने खत्म हो जाते हैं और एक अजब-सी जड़ मूर्च्छना हम पर छा जाती है।'

प्रकाश ने जब इसका समर्थन किया तो मैंने इनका विरोध किया और कहा, 'लेकिन व्यक्ति को तो हर हालत में ईमानदार बना रहना चाहिए। यह नहीं कि टूटता-फूटता चला जाए।'

तो माणिक मुल्ला बोले, 'यह सच है, पर जब पूरी व्यवस्था में बेईमानी है तो एक व्यक्ति की ईमानदारी इसी में है कि वह एक व्यवस्था द्वारा लादी गई सारी नैतिक विकृति को भी अस्वीकार करे और उसके द्वारा आरोपित सारी झूठी मर्यादाओं को भी, क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। लेकिन हम यह विद्रोह नहीं कर पाते, अत: नतीजा यह होता है कि जमुना की तरह हर परिस्थिति में समझौता करते जाते हैं।

'लेकिन सभी तो जमुना नहीं होते?' मैंने फिर कहा।

'हाँ, लेकिन जो इस नैतिक विकृति से अपने को अलग रख कर भी इस तमाम व्यवस्था के विरुद्ध नहीं लड़ते, उनकी मर्यादाशीलता सिर्फ परिष्कृत कायरता होती है। संस्कारों का अंधानुसरण! और ऐसे लोग भले आदमी कहलाए जाते हैं, उनकी तारीफ भी होती है, पर उनकी जिंदगी बेहद करुण और भयानक हो जाती है और सबसे बड़ा दु:ख यह है कि वे भी अपने जीवन का यह पहलू नहीं समझते और बैल की तरह चक्कर लगाते चले जाते हैं। मसलन मैं तुम्हें तन्ना की कहानी सुनाऊँ? तन्ना की याद है न? वही महेसर दलाल का लड़का!'

लोग व्यर्थ के वाद-विवाद से ऊब गए थे अत: माणिक मुल्ला ने कहानी सुनानी शुरू की -

अकस्मात ओंकार ने रोक कर कहा, 'इस कहानी का शीर्षक?' माणिक मुल्ला इस व्याघात से झल्ला उठे और बोले, 'हटाओ जी, मैं क्या किसी पत्रिका को कहानी भेज रहा हूँ कि शीर्षक के झगड़े में पड़ूँ। तुम लोग कहानी सुनने आए हो या शीर्षक सुनने? या मैं उन कहानी-लेखकों में से हूँ जो आकर्षक विषय-वस्तु के अभाव में आकर्षक शीर्षक दे कर पत्रों में संपादकों और पाठकों को ध्यान खींचा करते हैं!'

यह देख कर कि माणिक मुल्ला ओंकार को डाँट रहे हैं, हम लोगों ने भी ओंकार को डाँटना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि जब माणिक मुल्ला ने हम लोगों को डाँटा तो हम लोग चुप हुए और उन्होंने अपनी कहानी प्रारंभ की -

तन्ना के कोई भाई नहीं था। पर तीन बहनें थीं। उनमें से जो सबसे छोटी थी उसी को जन्म देने के बाद उसकी माँ गोलोक चली गई थी। रह गए पिताजी जो दलाल थे। चूँकि बच्चे छोटे थे, उनकी देख-भाल करनेवाला कोई नहीं था, अत: तन्ना के पिता महेसर दलाल ने अपनी यह इच्छा जाहिर की कि किसी भले घर की कोई दबी-ढँकी सुशील कन्या मिल जाए तो बच्चों का पालन-पोषण हो जाए, वरना अब उन्हें क्या बुढ़ापे में कोई औरत का शौक चढ़ा है? राम राम! ऐसी बात सोचना भी नहीं चाहिए। उन्हें तो सिर्फ बच्चों की फिक्र है वरना अब तो बचे-खुचे दिन राम के भजन में और गंगा-स्नान में काट देने हैं। रही तन्ना की माँ, सो तो देवी थी, स्वर्ग चली गई; महेसर दलाल

पापी थे सो रह गए। बच्चों का मुँह देख कर कुछ नहीं करते वरना हरद्वार जा कर बाबा काली कमलीवाले के भंडारों में दोनों जून भोजन करते और लोक-परलोक सुधारते।

लेकिन मुहल्ले-भर की बड़ी-बूढ़ी औरतें कोई ऐसी सुशील कन्या न जुटा पाईं जो बच्चों का भरण-पोषण कर सके, अंत में मजबूर हो कर महेसर दलाल एक औरत को सेवा-टहल और बच्चों के भरण-पोषण के लिए ले आए।

उस औरत ने आते ही पहले महेसर दलाल के आराम की सारी व्यवस्था की। उनका पलँग, बिस्तर, हुक्का-चिलम ठीक किया, उसके बाद तीनों लड़कियों के चरित्र और मर्यादा की कड़ी जाँच की और अंत में तन्ना की फिजूलखर्ची रोकने की पूरी कोशिश करने लगी। बहरहाल उसने तमाम बिखरती हुई गृहस्थी को बड़ी सावधानी से सँभाल लिया। अब उसमें अगर तन्ना और उनकी तीनों बहनों को कुछ कष्ट हुआ तो इसके लिए कोई क्या करे?

तन्ना की बड़ी बहन घर का काम-काज, झाड़ू-बुहार, चौका-बरतन किया करती थी; मँझली बहन जिसके दोनों पाँवों की हड्डियाँ बचपन से ही खराब हो गई थीं, या तो कोने में बैठे रहती थी या आँगन-भर में घिसल-घिसल कर सभी भाई-बहनों को गालियाँ देती रहती थी; सबसे छोटी बहन पंचम बनिया के यहाँ से तंबाकू, चीनी, हल्दी, मिट्टी का तेल और मंडी से अदरक, नींबू, हरी मिर्च, आलू और मूली वगैरह लाने में व्यस्त रहती थी। तन्ना सुबह उठ कर पानी से सारा घर धोते थे, बाँस में झाड़ू बाँध कर घर-भर का जाला पोंछते थे, हुक्का भरते थे, इतने में स्कूल का वक्त हो जाता था। लेकिन खाना इतनी जल्दी कहाँ से बन सकता था, अत: बिना खाए ही स्कूल चले

जाते थे। स्कूल से लौट कर आने पर उन्हें फिर शाम के लिए लकड़ी चीरनी पड़ती थी, बुरादे की अँगीठी भरनी पड़ती थी, दीया-बत्ती करनी पड़ती थी, बुआ (उस औरत को सब बच्चे बुआ कहा करें यह महेसर दलाल का हुक्म था) का बदन भी अकसर दबाना पड़ता था क्योंकि बेचारी काम करते-करते थक जाती थी और तब तन्ना चबूतरे के सामने लगी हुई म्यूनिसिपैलिटी की लालटेन के मंद-मधुर प्रकाश में स्कूल का काम किया करते थे। घर में लालटेन एक ही थी और वह बुआ के कमरे में जलती-बुझती रहती थी।

तन्ना का दिल कमजोर था। अत: तन्ना अक्सर माँ की याद करके रोया करते थे और उन्हें रोते देख कर बड़ी और छोटी बहन भी रोने लगती थी और मँझली अपने दोनों टूटे पैर पटक कर उन्हें गालियाँ देने लगती थी और दूसरे दिन वह बुआ से या बाप से शिकायत कर देती थी और बुआ माथे में आलता बिंदी लगाते हुए रोती हुई कहती थीं, 'इन कंबख्तों को मेरा खाना-पीना, उठना-बैठना, पहनना-ओढ़ना अच्छा नहीं लगता। पानी पी-पी कर कोसते रहते हैं। आखिर कौन तकलीफ है इन्हें! बड़े-बड़े नवाब के लड़के ऐसे नहीं रहते जैसे तन्ना बाबू बुल्ला बना के, पाटी पार के, छैल-चिकनियों की तरह घूमते हैं।' और उसके बाद महेसर दलाल को परिवार की मर्यादा कायम रखने के लिए तन्ना को बहुत मारना पड़ता था, यहाँ तक कि तन्ना की पीठ में नील उभर आती थी और बुखार चढ़ आता था और दोनों बहनें डर के मारे उनके पास जा नहीं पातीं और मँझली बहन मारे खुशी के आँगन-भर में घिसलती फिरती थी और छोटी बहन से कहती थी, 'खूब मार पड़ी। अरे अभी क्या? राम चाहें तो एक दिन पैर टूटेंगे, कोई मुँह में दाना डालनेवाला नहीं रह जाएगा। अरी चल, आज मेरी चोटी तो कर दे! आज खूब मार पड़ी है तन्ना को।'

इन हालतों में जमुना की माँ ने तन्ना को बहुत सहारा दिया। उनके यहाँ पूजा-पाठ अक्सर होता रहता था और उसमें वे पाँच बंदर और पाँच क्वाँरी कन्याओं को खिलाया करती थीं। बंदरों में तन्ना और कन्याओं में उनकी बहनों को आमंत्रण मिलता था और जाते समय बुआ साफ-साफ कह देती थीं कि दूसरों के घर जा कर नदीदों की तरह नहीं खाना चाहिए, आधी पूड़ियाँ बचा कर ले आनी चाहिए। वे लोग यही करते और चूँकि पूड़ी खाने से मेदा खराब हो जाता है अत: बेचारी बुआ पूड़ियाँ अपने लिए रख कर रोटी बच्चों को खिला देतीं।

तन्ना को अक्सर किसी-न-किसी बहाने जमुना बुला लेती थी और अपने सामने तन्ना को बिठा कर खाना खिलाती थी। तन्ना खाते जाते और रोते जाते क्योंकि यद्यपि जमुना उनसे छोटी थी पर पता नहीं क्यों उसे देखते ही तन्ना को अपनी माँ की याद आ जाती थी और तन्ना को रोते देख कर जमुना के मन में भी ममता उमड़ पड़ती और जमुना घंटों बैठ कर उनसे सुख-दु:ख की बातें करती रहती। होते-होते यह हो गया कि तन्ना के लिए कोई था तो जमुना थी और जमुना को चौबीसों घंटा अगर किसी की चिंता थी तो तन्ना की। अब इसी को आप प्रेम कह लें या कुछ और!

जमुना की माँ से बात छिपी नहीं रही, क्योंकि अपनी उम्र में वे भी जमुना ही रही होंगी - और उन्होंने बुला कर जमुना को बहुत समझाया और कहा कि तन्ना वैसे बहुत अच्छा लड़का है पर नीच गोत का है और अपने खानदान में अभी तक अपने से ऊँचे गोत में ही ब्याह हुआ है। पर जब जमुना बहुत रोई और उसने तीन दिन खाना नहीं खाया तो उसकी माँ ने आधे पर तोड़ कर

लेने का निर्णय किया यानी उन्होंने कहा कि अगर तन्ना घर-जमाई बनना पसंद करे तो इस प्रस्ताव पर गौर किया जा सकता है।

पर जैसा पहले कहा जा चुका है कि तन्ना थे ईमानदार आदमी और उन्होंने साफ कह दिया कि पिता, कुछ भी हो, आखिरकार पिता हैं। उनकी सेवा करना उनका धर्म है। वे घर-जमाई जैसी बात कभी नहीं सोच सकते। इस पर जमुना के घर में काफी संग्राम मचा पर अंत में जीत जमुना की माँ की रही कि जब दहेज होगा तब ब्याह करेंगे, नहीं लड़की क्वाँरी रहेगी। रास्ता नहीं सूझेगा तो लड़की पीपल से ब्याह देंगे पर नीचे गोतवालों को नहीं देंगे।

जब यह बात महेसर दलाल तक पहुँची तो उनका खून उबल उठा और उन्होंने पूछा - कहाँ है तन्ना? मालूम हुआ मैच देखने गया है तो उन्होंने चीख मार कर कहा ताकि जमुना के घर तक सुनाई दे - 'आने दो आज हरामजादे को। खाल न उधेड़ दी तो नाम नहीं। लकड़ी के ठूँठ को साड़ी पहना कर नौबत बजवा कर ले आऊँगा पर उनके यहाँ मैं लड़के का ब्याह करूँगा जिनके यहाँ...?' और उसके बाद उनके यहाँ का जो वर्णन महेसर दलाल ने किया उसे जाने ही दीजिए। बहरहाल बुआ ने तीन दिन तक खाना नहीं दिया और महेसर ने इतना मारा कि मुँह से खून निकल आया और तीसरे दिन भूख से व्याकुल तन्ना छत पर गए तो जमुना की माँ ने उन्हें देखते ही झट से खिड़की बंद कर ली। जमुना छज्जे पर धोती सुखा रही थी, क्षण-भर इनकी ओर देखती रही फिर चुपचाप बिना धोती सुखाए नीचे उतर गई। तन्ना चुपचाप थोड़ी देर उदास खड़े रहे फिर आँखों में आँसू भरे नीचे उतर आए और समझ गए कि उनका जमुना पर जो भी अधिकार था वह खत्म हो गया। और जैसा कहा जा चुका है कि वे ईमानदार आदमी थे अत: उन्होंने

कभी इधर का रुख भी न किया हालाँकि उधर देखते ही उनकी आँखों में आँसू छलक जाते थे और लगता था जैसे गले में कोई चीज फँस रही हो, सीने में कोई सूजा चला रहा हो। धीरे-धीरे तन्ना का मन भी पढ़ने से उचट गया और वे एफ.ए. के पहले साल में ही फेल हो गए।

महेसर दलाल ने उन्हें फिर खूब मारा, उनकी मँझली बहन खुश हो कर अपने लुंज-पुंज पैर पटकने लगी, और हालाँकि तन्ना खूब रोए और दबी जबान इसका विरोध भी किया, पर महेसर दलाल ने उनका पढ़ना-लिखना छुड़ा कर उन्हें आर.एम.एस. में भरती करा दिया और वे स्टेशन पर डाक का काम करने लगे। उसी समय महेसर दलाल की निगाह में एक लड़की

(यहाँ पर मैं यह साफ-साफ कह दूँ कि या तो कहानी की विषय-वस्तु के कारण हो, या उस दिन की सर्वग्रासी उमस के कारण, लेकिन उस दिन माणिक मुल्ला की कथा-शैली में वह चटपटापन नहीं था जो पिछली दो कहानियों में था। अजब ढंग से नीरस शैली में वे विवरण देते चले जा रहे थे और हम लोग भी किसी तरह ध्यान लगाने की कोशिश कर रहे थे। उमस बहुत थी। कहानी में भी, कमरे में भी।)

खैर, तो उसी समय महेसर दलाल की निगाह में एक लड़की आई जिसके बाप मर चुके थे। माँ की अकेली संतान थी। माँ की उम्र चाहे कुछ रही हो पर देख कर यह कहना कठिन था, माँ-बेटी में कौन उन्नीस है कौन बीस। कठिनाई एक थी, लड़की इंटर के इम्तहान में बैठ रही थी हालाँकि उम्र में तन्ना से बहुत छोटी थी। लेकिन मुसीबत यह थी कि उस रूपवती विधवा के पास जमीन-जायदाद काफी थी। न कोई देवर था, न कोई लड़का। अत:

उसकी सहायता और रक्षा के खयाल से तन्ना को इंटरमीडिएट पास बता कर महेसर दलाल ने उसकी लड़की से तन्ना की बात पक्की कर ली मगर इस शर्त के साथ कि शादी तब होगी जब महेसर दलाल अपनी लड़की को निबटा लेंगे और तब तक लड़की पढ़ेगी नहीं।

चूँकि लड़की की ओर से भी सारा इंतजाम महेसर दलाल को करना था अत: वे ग्यारह-बारह बजे रात तक लौट पाते थे और कभी-कभी रात को भी वहीं रह जाना पड़ता था क्योंकि लड़ाई चल रही थी और ब्लैक-आउट रहता था, लड़की का घर उसी मुहल्ले की एक दूसरी बस्ती में था जिसमें दोनों तरफ फाटक लगे थे, जो ब्लैकआउट में नौ बजते ही बंद हो जाते थे।

बुआ ने इसका विरोध किया, और नतीजा यह हुआ कि महेसर दलाल ने साफ-साफ कह दिया कि उसके घर में रहने से मुहल्ले में चारों तरफ चार आदमी चार तरह की बातें करते हैं। महेसर दलाल ठहरे इज्जतदार आदमी, उन्हें बेटे-बेटियों का ब्याह निबटाना है और वे यह ढोल कब तक अपने गले बाँधे रहेंगे। अंत में हुआ यह कि बुआ जैसे हँसती, इठलाती हुई आई थीं वैसे ही रोती-कलपती अपनी गठरी-मुठरी बाँध कर चली गईं और बाद में मालूम हुआ कि तन्ना की माँ के तमाम जेवर और कपड़े जो बहन की शादी के लिए रखे हुए थे, गायब हैं।

इसने तन्ना पर एक भयानक भार लाद दिया। महेसर दलाल का उन दिनों अजब हाल था। मुहल्ले में यह अफवाह फैली हुई थी कि महेसर दलाल जो कुछ करते हैं वह एक साबुन बेचनेवाली लड़की को दे आते हैं। तन्ना को घर का भी सारा खर्च चलाना पड़ता था, ब्याह की तैयारी भी करनी पड़ती थी,

दोपहर को ए.आर.पी. में काम करते थे, रात को आर.एम.एस. में और नतीजा यह हुआ कि उनकी आँखें धँस गईं, पीठ झुक गई, रंग झुलस गया और आँखों के आगे काले धब्बे उड़ने लगे।

जैसे-तैसे करके बहन की शादी निबटी। शादी में जमुना आई थी पर तन्ना से बोली नहीं। एक दालान में दोनों मिले तो चुपचाप बैठे रहे। जमुना नाखून से फर्श खोदती रही, तन्ना तिनके से दाँत खोदते रहे। यों जमुना बहुत सुंदर निकल आई थी और गुजराती जूड़ा बाँधने लगी थी, लेकिन यह कहा जा चुका है कि तन्ना ईमानदार आदमी थे। तन्ना का फलदान चढ़ा तो वह और भी सजधज के आई और उसने तन्ना से एक सवाल पूछा, 'भाभी क्या बहुत सुंदर हैं तन्ना?' 'हाँ!' तन्ना ने सहज भाव से बतला दिया तो रुँधते गले से बोली, 'मुझसे भी!' तन्ना कुछ नहीं बोले, घबरा कर बाहर चले आए और सुबह के लिए लकड़ी चीरने लगे।

तन्ना की शादी के बाद जमुना ने भाभी से काफी हेल-मेल बढ़ा लिया। रोज सुबह-शाम आती, तन्ना से बात भी न करती। दिन-भर भाभी के पास बैठी रहती। भाभी बहुत पढ़ी-लिखी थी, तन्ना से भी ज्यादा और थोड़ी घमंडी भी थी। बहुत जल्दी मैके चली गई तो एक दिन जमुना आई और तन्ना से ऐसी-ऐसी बातें करने लगी जैसी उसने कभी नहीं की थीं तो तन्ना ने उसके पाँव छू कर उसे समझाया कि जमुना, तुम कैसी बातें करती हो? तो जमुना कुछ देर रोती रही और फिर फुफकारती हुई चली गई।

उन्हीं दिनों मुहल्ले में एक अजब की घटना हुई। जिस साबुनवाली लड़की का नाम महेसर दलाल के साथ लिया जाता था वह एक दिन मरी हुई पाई गई।

उसकी लाश भी गायब कर दी गई और महेसर दलाल पुलिस के डर के मारे जा कर समधियाने में रहने लगे।

तन्ना की जिंदगी अजब-सी थी। पत्नी ज्यादा पढ़ी थी, ज्यादा धनी घर की थी, ज्यादा रूपवती थी, हमेशा ताने दिया करती थी, मँझली बहन घिसल-घिसल कर गालियाँ देती रहती थी, 'राम करे दोनों पाँव में कीड़े पड़ें!' अफसर ने उनको निकम्मा करार दिया था और उन्हें ऐसी ड्यूटी दे दी थी कि हफ्ते में चार दिन और चार रातें रेल के सफर में बीतती थीं और बाकी दिन हेडक्वार्टर में डाँट खाते-खाते। उनकी फाइल में बहुत शिकायतें लिख गई थीं। उन्हीं दिनों उनके यहाँ यूनियन बनी और वे ईमानदार होने के नाते उससे अलग रहे, नतीजा यह हुआ कि अफसर भी नाराज और साथी भी।

इसी बीच में जमुना का ब्याह हो गया, महेसर दलाल गुजर गए, पहला बच्चा होने में पत्नी मरते-मरते बची और बचने के बाद वह तन्ना से गंदी छिपकली से भी ज्यादा नफरत करने लगी। छोटी बहन ब्याह के काबिल हो गई और तन्ना सिर्फ इतना कर पाए कि सूख कर काँटा हो गए, कनपटियों के बाल सफेद हो गए, झुक कर चलने लगे, दिल का दौरा पड़ने लगा, आँख से पानी आने लगा और मेदा इतना कमजोर हो गया कि एक कौर भी हजम नहीं होता था।

डाक ले जाते हुए एक बार रेल में नीमसार जाती हुई तीर्थयात्रिणी जमुना मिली। साथ में रामधन था। जमुना बड़ी ममता से पास आ कर बैठ गई, उसके बच्चे ने मामा को प्रणाम किया। जमुना ने दोनों को खाना दिया। कौर तोड़ते हुए तन्ना की आँख में आँसू आ गए। जमुना ने कहा भी कि कोठी है,

ताँगा है, खुली आबोहवा है, आ कर कुछ दिन रहो, तंदुरुस्ती सँभल जाएगी, पर बेचारे तन्ना! नैतिकता और ईमानदारी बड़ी चीज होती है।

लेकिन उस सफर से जो तन्ना लौटे तो फिर पड़ ही गए। महीनों बुखार आया। रोग के बारे में डॉक्टरों की मुख्तलिफ राय थी। कोई हड्डी का बुखार बताता था, तो कोई खून की कमी, तो कोई टी.बी. भी बता रहा था। घर का यह हाल कि एक पैसा पास नहीं, पत्नी का सारा जेवर ले कर सास अपने घर चली गई, छोटी बहन रोया करे, मँझली घिसल-घिसल कर कहे, 'अभी क्या, अभी तो कीड़े पड़ेंगे!' सिर्फ यूनियन के कुछ लोग आ कर अच्छी-भली सलाहें दे जाते थे - साफ हवा में रखो, फलों का रस दो, बिस्तर रोज बदल देना चाहिए और बेचारे करते ही क्या!

होते-होते जब नौबत यहाँ तक पहुँची कि उन्हें दफ्तर से खारिज कर दिया गया, घर में फाके होने लगे तो उनकी सास आ कर अपनी लड़की को लिवा ले गई और बोली, जब कमर में बूता नहीं था तो भाँवरें क्यों फिरायी थीं और फिर यूनियन-फूनियन के गुंडे आवारे आ कर घर में हुड़दंगा मचाते रहते हैं। तन्ना की बहनें उनके सामने चाहे निकलें चाहे नाचें-गाएँ, उनकी लड़की यह पेशा नहीं कर सकती।

इधर यूनियन उनकी नौकरी के लिए लड़ रही थी और जब वे बहाल हो गए तो लोगों ने सलाह दी, दो हफ्ते के लिए चले जाएँ, बाकी लोग उनका काम करा दिया करेंगे और उसके बाद फिर छुट्टी ले लेंगे।

उनका तन हड्डी का ढाँचा-भर रह गया था। चलते हुए आप नजदीक से पसलियों की खड़बड़ाहट तक सुन सकते थे। किसी तरह हिम्मत बाँध कर गए। अफसर लोग चिढ़े हुए थे। मेल ट्रेन पर रात की ड्यूटी लगा दी और वह भी ऐन होली के दिन। रंग में भीगते हुए भी थर-थर काँपते हुए स्टेशन गए। सारा बदन जल रहा था। काम तो साथियों ने मिल कर कर दिया, वे चुपचाप पड़े रहे। डिब्बे में अंदर सीलन थी। बदन टूट रहा था, नसें ढीली पड़ गई थीं। सुबह हुई। टूंडला आया। थोड़ी-थोड़ी धूप निकल आई थी। वे जा कर दरवाजे के पास खड़े हो गए। गाड़ी चल दी। पाँव थर-थर काँप रहे थे, सहसा इंजन के पानी की टंकी की झूलती हुई बाल्टी इनकी कनपटी में लगी और फिर इन्हें होश नहीं रहा।

आँख खुली तो टूंडला के रेलवे अस्पताल में थे। दोनों पाँव नहीं थे। आस-पास कोई नहीं था, बेहद दर्द था। खून इतना निकल चुका था कि आँख से कुछ ठीक दिखाई नहीं पड़ता था। सोचा, किसी को बुलावें तो मुँह से जमुना का नाम निकला, फिर अपने बच्चे का, फिर बापू (महेसर) का और फिर चुप हो गए।

लोगों ने बहुत पूछा, 'किसे तार दे दें, क्या किया जाए?' पर वे कुछ नहीं बोले। सिर्फ मरने के पहले उन्होंने अपनी दोनों कटी टाँगें देखने की इच्छा प्रकट की और वे लाई गईं तो ठीक से देख नहीं सकते थे, अत: बार-बार उन्हें छूते थे, दबाते थे, उठाने की कोशिश करते थे, और हाथ खींच लेते थे और थर-थर काँपने लगते थे।

पता नहीं मुझे कैसा लगा कि मैं निष्कर्ष सुनने की प्रतीक्षा किए बिना चुपचाप उठ कर चला आया।

अनध्याय

बेहद उमस! मन की गहरी से गहरी पर्त में एक अजब-सी बेचैनी। नींद आ भी रही है और नहीं भी आ रही। नीम की डालियाँ खामोश हैं। बिजली के प्रकाश में उनकी छायाएँ मकानों, खपरैलों, बारजों और गलियों में सहमी खड़ी हैं।

मेरे अर्धसुप्त मन में असंबद्ध स्वप्न-विचारों का सिलसिला।

स्वर्ग का फाटक। रूप, रेखा, रंग, आकार कुछ नहीं जैसा अनुमान कर लें। अतियथार्थवादी कविताएँ जिनका अर्थ कुछ नहीं जैसा अनुमान कर लें। फाटक पर रामधन बाहर बैठा है। अंदर जमुना श्वेतवसना, शांत, गंभीर। उसकी विश्रृंखल वासना, उसका वैधव्य, पुरइन के पत्तों पर पड़ी ओस की तरह बिखर चुका है, वह वैसी ही है जैसी तन्ना को प्रथम बार मिली थी।

फाटक पर घोड़े की नालें जड़ी हैं। एक, दो, असंख्य! दूर धुँधले क्षितिज से एक पतला धुएँ की रेखा-सा रास्ता चला आ रहा है। उस पर कोई दो चीजें रेंग रही हैं। रास्ता रह-रह कर काँप उठता है, जैसे तार का पुल।

बादलों में एक टार्च जल उठती है। राह पर तन्ना चले आ रहे हैं। आगे-आगे तन्ना, कटे पाँवों से घिसलते हुए, पीछे-पीछे उनकी दो कटी टाँगें लड़खड़ाती चली आ रही है। टाँगों पर आर.एम.एस. के रजिस्टर लदे हैं।

फाटक पर पाँव रुक जाते हैं। फाटक खुल जाते हैं। तन्ना फाइल उठा कर अंदर चले जाते हैं। दोनों पाँव बाहर छूट जाते हैं। बिस्तुइया की कटी हुई पूँछ की तरह छटपटाते हैं।

कोई बच्चा रो रहा है। वह तन्ना का बच्चा है। दबे हुए स्वर : यूनियन, एस.एम.आर., एम.आर.एस., आर.एम.एस., यूनियन। दोनों कटे पाँव वापस चल पड़ते हैं, धुएँ का रास्ता तार के पुल की तरह काँपता है।

दूर किसी स्टेशन से कोई डाकगाड़ी छूटती है।...

चौथी दोपहर

(मालवा की युवरानी देवसेना की कहानी)

आँख लग जाने के थोड़ी देर बाद सहसा उमस चीरते हुए हवा का एक झोंका आया और फिर तो इतने तेज झकोरे आने लगे कि नीम की शाखें झूम उठीं। थोड़ी देर में तारों का एक काला परदा छा गया। हवाएँ अपने साथ बादल ले आई थीं। सुबह हम लोग बहुत देर तक सोए क्योंकि हवा चल रही थी और धूप का कोई सवाल नहीं था।

पता नहीं देर तक सोने का नतीजा हो या बादलों का, क्योंकि कालिदास ने भी कहा है -'रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च...' पर मेरा मन बहुत उदास-सा था और मैं लेट कर कोई किताब पढ़ने लगा, शायद 'स्कंदगुप्त' जिसमें अंत में नायिका देवसेना राग विहाग में 'आह वेदना मिली विदाई' गाती है और घुटने टेक कर विदा माँगती है - इस जीवन के देवता और उस जन्म के प्राप्य क्षमा! और उसके बाद अनंत विरह के साथ परदा गिर जाता है।

उसको पढ़ने से मेरा मन और भी उदास हो गया और मैंने सोचा चलो माणिक मुल्ला के यहाँ ही चला जाए। मैं पहुँचा तो देखा कि माणिक मुल्ला चुपचाप बैठे खिड़की की राह बादलों की ओर देख रहे हैं और कुरसी से लटकाए हुए दोनों पाँव धीरे-धीरे हिला रहे हैं। मैं समझ गया कि माणिक मुल्ला के मन में कोई बहुत पुरानी व्यथा जाग गई है क्योंकि ये लक्षण उसी बीमारी के होते हैं। ऐसी हालत में साधारणतया माणिक-जैसे लोगों की दो प्रतिक्रियाएँ होती हैं। अगर कोई उनसे भावुकता की बात करे तो वे फौरन उसकी खिल्ली उड़ाएँगे, पर जब वह चुप हो जाएगा तो धीरे-धीरे खुद वैसी ही

बातें छेड़ देंगे। यही माणिक ने भी किया। जब मैंने उनसे कहा कि मेरा मन बहुत उदास है तो वे हँसे और मैंने जब कहा कि कल रात के सपने ने मेरे मन पर बहुत असर डाला है तो वे और भी हँसे और बोले, 'उस सपने से तो दो ही बातें मालूम होती हैं।'

'क्या?' मैंने पूछा।

'पहली तो यह कि तुम्हारा हाजमा ठीक नहीं है, दूसरे यह कि तुमने डांटे की 'डिवाइना कामेडिया' पढ़ी है जिसमें नायक को स्वर्ग में नायिका मिलती है और उसे ईश्वर के सिंहासन तक ले जाती है।' जब मैंने झेंप कर यह स्वीकार किया कि दोनों बातें बिलकुल सच हैं तो फिर वे चुप हो गए और उसी तरह खिड़की की राह बादलों की ओर देख कर पाँव हिलाने लगे। थोड़ी देर बाद बोले, 'पता नहीं तुम लोगों को कैसा लगता है, मुझे तो बादलों को देख कर वैसा लगता है जैसे उस घर को देख कर लगता है जिसमें हमने अपना हँसी-खुशी से बचपन बिताया हो और जिसे छोड़ कर हम पता नहीं कहाँ-कहाँ घूमे हों और भूल कर फिर उसी मकान के सामने बरसों बाद आ पहुँचे हों।' जब मैंने स्वीकार किया कि मेरे मन में भी यही भावना होती है तो और भी उत्साह में भर कर बोले, 'देखो, अगर जिंदगी में फूल न होते, बादल न होते, पवित्रता न होती, प्रकाश न होता, सिर्फ अँधेरा होता, कीचड़ होता, गंदगी होती तो कितना अच्छा होता! हम सब उसमें कीड़े की तरह बिलबिलाते और मर जाते, कभी अंत:करण में किसी तरह की छटपटाहट न होती। लेकिन बड़ा अभागा होता है वह दिन जिस दिन हमारी आत्मा पवित्रता की एक झलक पा लेती है, रोशनी का एक कण पा लेती है क्योंकि उसके बाद सदियों तक अँधेरे में कैद रहने पर भी रोशनी की प्यास उसमें मर नहीं पाती, उसे

तड़पाती रहती है। वह अँधेरे से समझौता कर ले पर उसे चैन कभी नहीं मिलती।' मैं उनकी बातों से पूर्णतया सहमत था पर लिख चाहे थोड़ा-बहुत लूँ, मुझे उन दिनों अच्छी हिंदी बोलने का इतना अभ्यास नहीं था अत: उनकी उदासी से सहमति प्रकट करने के लिए मैं चुपचाप मुँह लटकाए बैठा रहा था। बिलकुल उन्हीं की तरह मुँह लटकाए हुए बादलों की ओर देखता रहा और नीचे पाँव झुलाता रहा। माणिक मुल्ला कहते गए - 'अब यही प्रेम की बात लो। यह सच है कि प्रेम आर्थिक स्थितियों से अनुशासित होता है, लेकिन मैंने जो जोश में कह दिया था कि प्रेम आर्थिक निर्भरता का ही दूसरा नाम है, यह केवल आंशिक सत्य है। इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि प्यार - 'यहाँ माणिक मुल्ला रुक गए और मेरी ओर देख कर बोले, 'क्षमा करना, तुम्हारी अभ्यस्त शैली में कहूँ तो इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि प्यार आत्मा की गहराइयों में सोये हुए सौंदर्य के संगीत को जगा देता है, हममें अजब-सी पवित्रता, नैतिक निष्ठा और प्रकाश भर देता है आदि-आदि। लेकिन...'

'लेकिन क्या?' मैंने पूछा।

'लेकिन हम सब परंपराओं, सामाजिक परिस्थितियों, झूठे बंधनों में इस तरह कसे हुए हैं कि उसे सामाजिक स्तर ग्रहण नहीं करा पाते, उसके लिए संघर्ष नहीं कर पाते और बाद में अपनी कायरता और विवशताओं पर सुनहरा पानी फेर कर उसे चमकाने की कोशिश करते रहते हैं। इस रूमानी प्रेम का महत्व है, पर मुसीबत यह है कि वह कच्चे मन का प्यार होता है, उसमें सपने, इंद्रधनुष और फूल तो काफी मिकदार में होते हैं पर वह साहस और परिपक्वता नहीं होती जो इन सपनों और फूलों को स्वस्थ सामाजिक संबंध

में बदल सके। नतीजा यह होता है कि थोड़े दिन बाद यह सब मन से उसी तरह गायब हो जाता है जैसे बादल की छाँह। आखिर हम हवा में तो नहीं रहते हैं और जो भी भावना हमारे सामाजिक जीवन की खाद नहीं बन पाती, जिंदगी उसे झाड़-झंखाड़ की तरह उखाड़ फेंकती है।'

ओंकार, श्याम और प्रकाश भी तब तक आ गए थे। और हम सब लोग मन-ही-मन इंतजार कर रहे थे कि माणिक मुल्ला कब अपनी कहानी शुरू करें, पर उनकी खोई-सी मन:स्थिति देख कर हम लोगों की हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

इतने में माणिक मुल्ला खुद हम लोगों के मन की बात समझ गए और सहसा अपने दिवास्वप्नों की दुनिया से लौटते हुए फीकी हँसी हँस कर बोले, 'आज मैं तुम लोगों को एक ऐसी लड़की की कहानी सुनाऊँगा, जो ऐसे बादलों के दिन मुझे बार-बार याद आ जाती है। अजब थी वह लड़की!'

इसके बाद माणिक मुल्ला ने जब कहानी प्रारंभ की तभी मैंने टोका और उनको याद दिलाई कि उनकी कहानी में समय का विस्तार इतना सीमाहीन था कि घटनाओं का क्रम बहुत तेजी से चलता गया और वे विवरण में इतनी तेजी से चले कि वैयक्तिक मनोविश्लेषण और मन:स्थिति निरूपण पर ठीक से ध्यान नहीं दे पाए। माणिक मुल्ला ने पिछली कहानी की इस कमी को स्वीकार किया, लेकिन लगता है अंदर-अंदर उन्हें कुछ लगा क्योंकि उन्होंने चिढ़ कर बहुत कड़वे स्वर में कहा, 'अच्छा लो, आज की कहानी का घटनाकाल केवल चौबीस घंटे में ही सीमित रहेगा - 29 जुलाई, सन 19...को सायंकाल छह बजे से 30 जुलाई सायंकाल छह बजे तक, और उसके बाद

उन्होंने कहानी प्रारंभ की : (कहानी कहने के पहले मुझसे बोले, 'शैली में तुम्हारी झलक आ जाए तो क्षमा करना।')

खिड़की पर झूलते हुए जार्जेट के हवा से भी हल्के परदों को चूमते हुए शाम के सूरज की उदास पीली किरणों ने झाँक कर उस लड़की को देखा जो तकिए में मुँह छिपाए सिसक रही थी। उसकी रूखी अलकें खारे आँसू से धुले गालों को छू कर सिहर उठती थीं। चंपे की कलियों-सी उसकी लंबी पतली कलात्मक उँगलियाँ, सिसकियों-से काँप-काँप उठनेवाला उसका सोनजुही-सा तन, उसके गुलाब की सूखी पाँखुरियों-से होठ, और कमरे का उदास वातावरण; पता नहीं कौन-सा वह दर्द था जिसकी उदास उँगलियाँ रह-रह कर उसके व्यक्तित्व के मृणाल-तंतुओं के संगीत को झकझोर रही थीं।

थोड़ी देर बाद वह उठी। उसकी आँखों के नीचे एक हलकी फालसाई छाँह थी जो सूज आई थी। उसकी चाल हंस की थी, पर ऐसे हंस की जो मानसरोवर से न जाने कितने दिनों के लिए विदा ले रहा हो। उसने एक गहरी साँस ली और लगा जैसे हवाओं में केसर के डोरे बिखर गए हों। वह उठी और खिड़की के पास जा कर बैठ गई। हवाओं से जार्जेट के परदे उठ कर उसे गुदगुदा जाते थे, कभी कानों के पास, कभी होठों के पास, कभी... खैर!

बाहर सूरज की आखरी किरणें नीम और पीपल के शिखरों पर सुनहली उदासी बिखेर रही थीं। क्षितिज के पास एक गहरी जामुनी पर्त जमी थी, जिस पर गुलाब बिखरे हुए थे और उसके बाद हल्की पीली आँधी की आभा लहरा रही थी।

'आँधी आनेवाली है बेटी! चलो खाना खा लो!' माँ ने दरवाजे पर से कहा। लड़की कुछ नहीं बोली, सिर्फ सिर हिला दिया। माँ कुछ नहीं बोली, इसरार भी नहीं किया। माँ की अकेली लड़की थी, घर-भर में माँ और बेटी ही थीं, बेटी समझो तो बेटा समझो तो! बेटी की बात काटने की हिम्मत किसी में नहीं थी। माँ थोड़ी देर चुपचाप खड़ी रही, चली गई। लड़की सूनी-सूनी आँखों से चुपचाप जामुनी रंग के घिरते हुए बादलों को देखती रही और उन पर धधकते हुए गुलाबों को और उन पर घिरती हुई आँधी को।

शाम ने धुँधलके का सुरमई दुपट्टा ओढ़ लिया। वह चुपचाप वहीं बैठी रही, बेले की बनी हुई कला-प्रतिमा की तरह, निगाहों में रह-रह कर नरगिस, उदास और लजीली नरगिस झूम जाती थी।

'कहिए जनाब!' माणिक ने प्रवेश किया तो वह उठी और चुपचाप लाइट ऑन कर दी। माणिक मुल्ला ने उसकी खिन्न मन:स्थिति, उसका अश्रुसिक्त मौन देखा तो रुक गए और गंभीर हो कर बोले, 'क्या हुआ? लिली! लिली!'

'कुछ नहीं!' लड़की ने हँसने का प्रयास करते हुए कहा, मगर आँखें डबडबा आईं और वह माणिक मुल्ला के पाँवों के पास बैठ गई।

माणिक ने उसके बुंदों में उलझी एक सूखी लट को सुलझाते हुए कहा, 'तो नहीं बताओगी?'

'हम कभी छिपाते हैं तुमसे कोई बात!'

'नहीं, अब तक तो नहीं छिपाती थी, आज से छिपाने लगी हो!'

'नहीं, कोई बात नहीं। सच मानो!' लड़की ने, जिसका नाम लीला था लिली नाम से पुकारी जाती थी, माणिक की कमीज के काँच के बटन खोलते और बंद करते हुए कहा।

'अच्छा मत बताओ! हम भी अब तुम्हें कुछ नहीं बताएँगे।' माणिक ने उठने का उपक्रम करते हुए कहा।

'तो चले कहाँ -' वह माणिक के कंधे पर झुक गई - 'बताती तो हूँ।'

'तो बताओ!'

लिली थोड़ा झेंप गई और फिर उसने माणिक की हथेली अपनी सूजी पलकों पर रख कर कहा, 'हुआ ऐसा कि आज देवदास देखने गए थे। कम्मो भी साथ थी। खैर, उसकी समझ में आई नहीं। मुझे पता नहीं कैसा लगने लगा। माणिक, क्या होगा, बताओ? अभी तो एक दिन तुम नहीं आते हो तो न खाना अच्छा लगता है, न पढ़ना। फिर महीनों-महीनों तुम्हें नहीं देख पाएँगे। सच, वैसे चाहे जितना हँसते रहो, बोलते रहो, पर जहाँ इस बात का ध्यान आया कि मन को जैसे पाला मार जाता है।'

माणिक कुछ नहीं बोले। उनकी आँखों में एक करुण व्यथा झलक आई और चुपचाप बैठे रहे। आँधी आ गई थी और मेज के नीचे सिनेमा के दो आधे फटे

हुए टिकट आँधी की वजह से तमाम कमरे में घायल तितलियों के जोड़े की तरह इधर-उधर उड़ कर दीवारों से टकरा रहे थे।

माणिक के पाँवों पर टप से एक गरम आँसू चू पड़ा तो उन्होंने चौंक कर देखा लिली की पलकों में आँसू छलक रहे थे। उन्होंने हाथ पकड़ कर लिली को पास खींच लिया और उसे सामने बिठा कर, उसके दो नन्हे उजले कबूतरों जैसे पाँवों पर उँगली से धारियाँ खींचते हुए बोले, 'छिः! यह सब रोना-धोना हमारी लिली को शोभा नहीं देता। यह सब कमजोरी है, मन का मोह और कुछ नहीं। तुम जानती हो कि मेरे मन में कभी तुम्हारे लिए मोह नहीं रहा, तुम्हारे मन में मेरे लिए कभी अधिकार की भावना नहीं रही। अगर हम दोनों जीवन में एक दूसरे के निकट आए भी तो इसलिए कि हमारी अधूरी आत्माएँ एक दूसरे को पूर्ण बनाएँ, एक दूसरे को बल दें, प्रकाश दें, प्रेरणा दें। और दुनिया की कोई भी ताकत कभी हमसे हमारी इस पवित्रता को छीन नहीं सकती। मैं जानता हूँ कि तमाम जीवन मैं जहाँ कहीं भी रहूँगा, जिन परिस्थितियों में भी रहूँगा, तुम्हारा प्यार मुझे बल देता रहेगा फिर तुममें इतनी अस्थिरता क्यों आ रही है? इसका मतलब यह है कि पता नहीं मुझमें कौन-सी कमी है कि तुम्हें वह आस्था नहीं दे पा रहा हूँ!'

लिली ने आँसू डूबी निगाहें उठाईं और कायरता से माणिक की ओर देखा जिसका अर्थ था - 'ऐसा न कहो, मेरे जीवन में, मेरे व्यक्तित्व में जो कुछ है तुम्हारा ही तो दिया हुआ है।' पर लिली ने यह शब्दों से नहीं कहा, निगाहों से कह दिया।

माणिक ने धीरे-से उसी के आँचल से उसके आँसू पोंछ दिए। बोले, 'जाओ, मुँह धो आओ! चलो!' लिली मुँह धो कर आ गई। माणिक बैठे हुए रेडियो की सुई इस तरह घुमा रहे थे कि कभी झम से दिल्ली बज उठता था, कभी लखनऊ की दो-एक अस्फुट संगीतलहरी सुनाई पड़ जाती थी, कभी नागपुर, कभी कलकत्ता, (इलाहाबाद में सौभाग्य से तब तक रेडियो स्टेशन था ही नहीं!) लिली चुपचाप बैठी रही, फिर उठ कर उसने रेडियो ऑफ कर दिया और आकुल आग्रह-भरे स्वर में बोली, 'माणिक, कुछ बात करो! मन बहुत घबरा रहा है।'

माणिक हँसे और बोले, 'अच्छा आओ बात करें, पर हमारी लिली जितनी अच्छी बात कर लेती है, उतनी मैं थोड़े ही कर पाता हूँ। लेकिन खैर! तो तुम्हारी कम्मो की समझ में तसवीर नहीं आई!'

'उहूँक!'

'कम्मो बड़ी कुंदजेहन है, लेकिन कोशिश हमेशा यही करती है कि सब काम में टाँग अड़ाए।'

'तुम्हारी जमुना से तो अच्छी ही है!'

जमुना के जिक्र पर माणिक को हँसी आ गई और फिर आग्रह से, बेहद दुलार और बेहद नशे से लिली की ओर देखते हुए बोले, 'लिली, तुमने स्कंदगुप्त खतम कर डाली!'

'हाँ।'

'कैसी लगी!'

लिली ने सिर हिला कर बताया कि बहुत अच्छी लगी। माणिक ने धीरे से लिली का हाथ अपने हाथों में ले लिया और उसकी रेखाओं पर अपने काँपते हुए हाथ को रख कर बोले, 'मैं चाहता हूँ मेरी लिली उतनी ही पवित्र, उतनी ही सूक्ष्म, उतनी ही दृढ़ बने जितनी देवसेना थी। तो लिली वैसी ही बनेगी न!'

किसी मानवोपरि, देवताओं के संगीत से मुग्ध, भोली हिरणी की तरह लिली ने एक क्षण माणिक की ओर देखा और उनकी हथेलियों में मुँह छिपा लिया।

'वाह! उधर देखो लिली!' माणिक ने दोनों हाथों से लिली का मुँह कमल के फूल की तरह उठाते हुए कहा। बाहर गली की बिजली पता नहीं क्यों जल नहीं रही थी, लेकिन रह-रह कर बैंजनी रंग की बिजलियाँ चमक जाती थीं और लंबी पतली गली, दोनों ओर के पक्के मकान, उनके खाली चबूतरे, बंद खिड़कियाँ, सूने बारजे, उदास छतें, उन बैंजनी बिजलियों में जाने कैसे जादू के-से, रहस्यमय-से लग रहे थे। बिजली चमकते ही अँधेरा चीर कर वे खिड़की से दीख पड़ते, और फिर सहसा अंधकार में विलीन हो जाते और उस बीच के एक क्षण में उनकी दीवारों पर तड़पती हुई बिजली की बैंजनी रोशनी लपलपाती रहती, बारजों की कोरों से पानी की धारें गिरती रहतीं, खंभे और बिजली के तार काँपते रहते और हवाओं में बूँदों की झालरें लहराती रहतीं। सारा वातावरण जैसे बिजली के एक क्षीण आघात से काँप रहा था, डोल रहा था।

एक तेज झोंका आया और खिड़की के पास खड़ी लिली बौछार से भीग गई, और भौंहों से, माथे से बूँदें पोंछती हुई हटी तो माणिक बोले, 'लिली वहीं खड़ी रहो, खिड़की के पास, हाँ बिलकुल ऐसे ही। बूँदें मत पोंछो। और लिली, यह एक लट तुम्हारी भीग कर झूल आई है कितनी अच्छी लग रही है!'

लिली कभी चुपचाप लजाती हुई खिड़की के बाहर, कभी लजाती हुई अंदर माणिक की ओर देखती हुई बौछार में खड़ी रही। जब बिजलियाँ चमकतीं तो ऐसा लगता जैसे प्रकाश के झरने में काँपता हुआ नील कमल। पहले माथा भीगा - लिली ने पूछा, 'हटें!' माणिक बोले, 'नहीं!' माथे से पानी गरदन पर आया, बूँदें उसके गले में पड़ी सुनहली मटरमाला को चूमती हुई नीचे उतरने लगीं, वह सिहर उठी। 'सरदी लग रही है?' माणिक ने पूछा। एक अजब-से अल्हड़ आत्म-समर्पण के स्वर में लिली बोली, 'नहीं, सरदी नहीं लग रही है! लेकिन तुम बड़े पागल हो!'

'हूँ तो नहीं, कभी-कभी हो जाता हूँ! लिली, एक अँग्रेजी की कविता है - 'ए लिली गर्ल नॉट मेड फॉर दिस वर्ल्डस पेन!' एक फूल-सी लड़की जो इस दुनिया के दु:ख-दर्द के लिए नहीं बनी। लिली यह कवि तुम्हें जानता था क्या? 'लिली' - तुम्हारा नाम तक लिख दिया है।'

'हूँ! हमें तो जरूर जानता था। तुम्हें भी एक नई बात रोज सूझती रहती है।'

'नहीं! देखो उसने यहाँ तक तो लिखा है - 'एंड लांगिंग आइज हाफ वेल्ड विद स्लंबरस टीयर्स, लाइक ब्लूएस्ट वाटर्स सोन थ्रू मिस्ट्स, ऑफ रेन' -

लालसा-भरी निगाहें, उनींदे आँसुओं से आच्छादित जैसे पानी की बौछार में धुँधली दीखने वाली नील झील...'

सहसा तड़प कर दूर कहीं बिजली गिरी और लिली चौंक कर भागी और बदहवास माणिक के पास आ गिरी। दो पल तक बिजली की दिल दहला देनेवाली आवाज गूँजती रही और लिली सहमी हुई गौरैया की तरह माणिक की बाँहों के घेरे में खड़ी रही। फिर उसने आँखें खोलीं, और झुक कर माणिक के पाँवों पर दो गरम होंठ रख दिए। माणिक की आँखों में आँसू आ गए। बाहर बारिश धीमी पड़ गई थी। सिर्फ छज्जों से, खपरैलों से टप-टप कर बूँदें चू रही थीं। हल्के-हल्के बादल अँधेरे में उड़े जा रहे थे।

सुबह लिली जागी - लेकिन नहीं, जागी नहीं - लिली को रात-भर नींद आई नहीं थी। उसे पता नहीं कब माँ ने खाने के लिए जगाया, उसने कब मना कर दिया, कब और किसने उसे पलँग पर लिटाया - उसे सिर्फ इतना याद है कि रात-भर वह पता नहीं किसके पाँवों पर सिर रख कर रोती रही। तकिया आँसुओं से भीग गया था, आँखें सूज आई थीं।

कम्मो सुबह ही आ गई थी। आज लिली को जेवर पहनाया जानेवाला था, शाम को सात बजे लोग आनेवाले थे, सास तो थी ही नहीं, ससुर आनेवाले थे और कम्मो, जो लिली की घनिष्ट मित्र थी, पर उस घर को सजाने का पूरा भार था और लिली थी कि कम्मो के कंधे पर सिर रख कर इस तरह बिलखती थी कि कुछ पूछो मत!

कम्मो बड़ी यथार्थवादिनी, बड़ी ही अभावुक लड़की थी। उसने इतनी सहेलियों की शादियाँ होते देखी थीं। पर लिली की तरह बिना बात के बिलख-बिलख कर रोते किसी को नहीं देखा था। जब विदा होने लगे तो उस समय तो रोना ठीक है, वरना चार बड़ी-बूढ़ियाँ कहने लगती हैं कि देखो! आजकल की लड़कियाँ हया-शरम धो के पी गई हैं। कैसी ऊँट-सी गरदन उठाए ससुराल चली जा रही हैं। अरे हम लोग थे कि रोते-रोते भोर हो गई थी और जब हाथ-पाँव पकड़ के भैया ने डोली में ढकेल दिया तो बैठे थे। एक ये हैं! आदि।

लेकिन इस तरह रोने से क्या फायदा और वह भी तब जब माँ या और लोग सामने न हों। सामने रोए तो एक बात भी है! बहरहाल कम्मो बिगड़ती रही और लिली के आँसू थमते ही न थे।

कम्मो ने काम बहुत जल्दी ही निबटा लिया लेकिन वह घर में कह आई थी कि अब दिन-भर वहीं रहेगी। कम्मो ठहरी घूमने-फिरनेवाली कामकाजी लड़की। उसे खयाल आया कि उसे एलनगंज जाना है, वहाँ से अपनी कढ़ाई की किताबें वगैरह वापस लानी हैं, और फिर उसे एक क्षण चैन नहीं पड़ा। उसने लिली की माँ से पूछा, जल्दी से लिली को मार-पीट कर जबरदस्ती तैयार किया और दोनों सखियाँ चल पड़ीं।

बादल छाए हुए थे और बहुत ही सुहावना मौसम था। सडक़ों पर जगह-जगह पानी जमा था, जिनमें चिड़ियाँ नहा रही थीं। एलनगंज में अपना काम निबटा कर दोनों पैदल टहलने चल दीं। थोड़ी ही दूर आगे बाँध था, जिसके नीचे से एक पुरानी रेल की लाइन गई थी जो अब बंद पड़ी थी। लाइनों के

बीच में घास उग आई थी और बारिश के बाद घास में लाल हीरों की तरह जगमगाती हुई बीरबहूटियाँ रेंग रही थीं। दोनों सखियाँ वहीं बैठ गईं - एक बीरबहूटी रह-रह कर उस जंग खाए हुए लोहे की लाइन को पार करने की कोशिश कर रही थी और बार-बार फिसल कर गिर जाती थी। लिली थोड़ी देर उसे देखती रही और फिर बहुत उदास हो कर कम्मो से बोली, 'कम्मो रानी! अब उस पिंजरे से निस्तार नहीं होगा, कहाँ ये घूमना-फिरना, कहाँ तुम।' कम्मो जो एक घास की डंठल चबा रही थी, तमक कर बोली, 'देखो लिल्ली घोड़ी! मेरे सामने ये अँसुआ ढरकाने से कोई फायदा नहीं। समझीं! हमें ये सब चोचला अच्छा नहीं लगता। दुनिया की सब लड़कियाँ तो पैदा होके ब्याह करती हैं, एक तुम अनोखी पैदा हुई हो क्या? और ब्याह के पहले सभी ये कहती हैं, ब्याह के बाद भूल भी जाओगी कि कम्मो कंबख्त किस खेत की मूली थी!'

लिली कुछ नहीं बोली, खिसियानी-सी हँसी हँस दी। दोनों सखियाँ आगे चलीं। धीरे-धीरे लिली बीरबहूटियाँ बटोरने लगी। सहसा कम्मो ने उसे एक झाड़ी के पास पड़ी साँप की केंचुल दिखाई, फिर दोनों एक बहुत बड़े अमरूद के बाग के पास आईं और दो-तीन बरसाती अमरूद तोड़ कर खाए जो काफी बकठे थे, और अंत में पुरानी कब्रों और खेतों में से होती हुई वे एक बहुत बड़े-से पोखरे के पास आईं जहाँ धोबियों के पत्थर लगे हुए थे। केंचुल, बीरबहूटी, अमरूद और हरियाली ने लिली के मन को एक अजीब-सी राहत दी और रो-रो कर थके हुए उसके मन ने उल्लास की एक करवट ली। उसने चप्पल उतार दी और भीगी हुई घास पर टहलने लगी। थोड़ी देर में लिली बिलकुल दूसरी ही लिली थी, हँसी की तरंगों पर धूप की तरह जगमगाने वाली, और शाम को

पाँच बजे जब दोनों घर लौटीं तो उनकी खिलखिलाहट से मुहल्ला हिल उठा और लिली को बहुत कस कर भूख लग आई थी।

दिन-भर घूमने से लिली को इतनी जोर की भूख लग आई थी कि आते ही उसने माँ से नाश्ता माँगा और जब अपने आप अलमारी से निकालने लगी तो माँ ने टोका कि खुद खा जाएगी तो तेरे ससुर क्या खाएँगे तो हँस के बोली, 'अरे उन्हें मैं बचा-खुचा अपने हाथ से खिला दूँगी। पहले चख तो लूँ, नहीं बदनामी हो बाद में!' इतने में मालूम हुआ वे लोग आ गए तो झट से वह नाश्ता आधा छोड़ कर अंदर गई। कम्मो ने उसे साड़ी पहनाई, उसे सजाया-सँवारा लेकिन उसे भूख इतनी लगी थी कि उन लोगों के सामने जाने के पहले वह फिर बैठ गई और खाने लगी, यहाँ तक कि कम्मो ने जबरदस्ती उसके सामने से तश्तरी हटा ली और उसे खींच ले गई।

दिन-भर खुली हवा में घूमने से और पेट भर कर खाने से सुबह लिली के चेहरे पर जो उदासी छाई थी वह बिलकुल गायब हो गई थी और उन लोगों को लड़की बहुत पसंद आई और पिछले दिन शाम को उसके जीवन में जो जलजला शुरू हुआ था वह दूसरे दिन शाम को शांत हो गया।

इतना कह कर माणिक मुल्ला बोले, 'और प्यारे बंधुओ! देखा तुम लोगों ने! खुली हवा में घूमने और सूर्यास्त के पहले खाना खाने से सभी शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ शांत हो जाती हैं अत: इससे क्या निष्कर्ष निकला?'

'खाओ, बदन बनाओ!' हम लोगों ने उनके कमरे में टँगे फोटो की ओर देखते हुए एक स्वर में कहा।

'लेकिन माणिक मुल्ला!' ओंकार ने पूछा, 'यह आपने नहीं बताया कि लड़की को आप कैसे जानते थे, क्यों जानते थे, कौन थी यह लड़की?'

'अच्छा! आप लोग चाहते हैं कि मैं कहानी का घटनाकाल भी चौबीस घंटे रखूँ और उसमें आपको सारा महाभारत और इनसाइक्लोपीडिया भी सुनाऊँ! मैं कैसे जानता था इससे आपको क्या मतलब? हाँ, यह मैं आपको बता दूँ कि यह लीला वही लड़की थी जिसका ब्याह तन्ना से हुआ था और उस दिन शाम को महेसर दलाल उसे देखने आनेवाले थे!'

पाँचवीं दोपहर

(काले बेंट का चाकू)

अगले दिन दोपहर को जब हम सब लोग मिले तो एक अजब-सी मन:स्थिति थी हम लोगों की। हम सब इस रंगीन रूमानी प्रेम के प्रति अपना मोह तोड़ नहीं पाते थे, और दूसरी ओर उस पर हँसी भी आती थी, तीसरी ओर एक अजब-सी ग्लानि थी अपने मन में कि हम सब, और हम सबके ये किशोरावस्था के सपने कितने निस्सार होते हैं और इन सभी भावनाओं का संघर्ष हमें एक अजीब-सी झेंप और झुँझलाहट - बल्कि उसे खिसियाहट कहना बेहतर होगा - की स्थिति में छोड़ गया था। लेकिन माणिक मुल्ला बिलकुल निर्द्वंद्व भाव से प्रसन्नचित्त हम लोगों से हँस-हँस कर बातें करते जा रहे थे और आलमारी तथा मेज पर से धूल झाड़ते जा रहे थे जो रात को आँधी के कारण जम जाती है, और ऐसा लगता था कि जैसे आदमी पुराने फटे हुए मोजों को कूड़े पर फेंक देता है उसी तरह अपने उस सारे रूमानी भ्रम को, सारी ममता छोड़ कर फेंक दिया है और उधर मुड़ कर देखने का भी मोह नहीं रखा।

सहसा मैंने पूछा, 'इस घटना ने तो आपके मन पर बहुत गहरा प्रभाव डाला होगा?'

मेरे इस प्रश्न से उनके चेहरे पर दो-चार बहुत करुण रेखाएँ उभर आईं लेकिन उन्होंने बड़ी चतुरता से अपनी मन:स्थिति छिपाते हुए कहा, 'मनोवैज्ञानिकों

का कहना है कि छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी, कोई घटना ऐसी नहीं जो आदमी के अंतर्मन पर गहरी छाप न छोड़ जाए।'

'कम-से-कम अगर मेरे जीवन में ऐसा हो, तो मेरी तो सारी जिंदगी बिलकुल मरुस्थल हो जाए। शायद दुनिया की कोई चीज मेरे मन में कभी रस का संचार न कर सके।' मैंने कहा।

माणिक मुल्ला मेरी ओर देख कर हँसे और बोले, 'इसके यह मतलब हैं कि तुमने अभी न तो जिंदगी देखी है और न अभी अच्छे उपन्यास ही पढ़े हैं। ज्यादातर ऐसा ही हुआ है, और ऐसा ही सुना गया है मित्रवर, कि इस प्रकार की निष्फल उपासना के बाद फिर जिंदगी में कोई दूसरी लड़की आती है जो बौद्धिक, नैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से निम्नतर स्तर की होती है पर जिसमें अधिक ईमानदारी, अधिक चरित्र, अधिक वफादारी और अधिक बल होता है। मसलन शरत चटर्जी के देवदास मुखर्जी को ही ले लो। पारो के बाद उन्हें चंद्रा मिली। इसी तरह के अन्य कितने ही उदाहरण दिए जा सकते हैं। माणिक मुल्ला को क्या तुम कम समझते हो? माणिक मुल्ला ने लिली के बाद गांधारी की तरह अपनी आँखों पर जीवन भर के लिए पट्टी बाँध लेने की कसम खा ली। लेकिन अच्छा होता कि पट्टी ही बाँध लेता क्योंकि लिली के बाद सत्ती का आकर्षण मेरे लिए शुभ नहीं हुआ और न उसके ही लिए। लेकिन वह बिलकुल दूसरी धातु की थी, जमुना से भी अलग और लिली से भी अलग। बड़ी विचित्र है उसकी कहानी भी...'

'लेकिन मुल्ला भाई! एक बात मैं कहूँगा, अगर तुम बुरा न मानो

तो - 'प्रकाश ने बात काट कर कहा, 'ये कहानियाँ जो तुम कहते हो बिलकुल सीधे-सादे विवरण की भाँति होती हैं। उनमें कुछ कथाशिल्प, कुछ काट-छाँट, कुछ टेकनीक भी तो होना चाहिए!'

'टेकनीक! हाँ टेकनीक पर ज्यादा जोर वही देता है जो कहीं-न-कहीं अपरिपक्व होता है, जो अभ्यास कर रहा है, जिसे उचित माध्यम नहीं मिल पाया। लेकिन फिर भी टेकनीक पर ध्यान देना बहुत स्वस्थ प्रवृत्ति है बशर्ते वह अनुपात से अधिक न हो जाए। जहाँ तक मेरा सवाल है मुझे तो कहानी कहने के दृष्टिकोण से फ्लाबेयर और मोपासा बहुत अच्छे लगते हैं क्योंकि उनमें पाठक को अपने जादू में बाँध लेने की ताकत है, वैसे उनके बाद चेखव कहानी के क्षेत्र में विचित्र व्यक्ति रहा है और मैं उसका लोहा मानता हूँ। चेखव ने एक बार किसी महिला से कहा था, 'कहानी कहना कठिन बात नहीं है। आप कोई चीज मेरे सामने रख दें, यह शीशे का गिलास, यह ऐश-ट्रे और कहें कि मैं इस पर कहानी कहूँ। थोड़ी देर में मेरी कल्पना जागृत हो जाएगी और उससे संबद्ध कितने लोगों के जीवन मुझे याद आ जाएँगे और वह चीज कहानी का सुंदर विषय बन जाएगी।'

मैंने अवसर का लाभ उठाते हुए फौरन वह काले बेंटवाला चाकू ताख पर से उठाया और बीच में रखते हुए कहा, 'अच्छा इसको सत्ती की कहानी का केंद्र-बिंदु बनाइए!'

'बनाइए!' माणिक मुल्ला गंभीर हो कर बोले, 'यह तो उसकी कहानी का केंद्र-बिंदु है ही! जब मैं यह चाकू देखता हूँ तो कल्पना करता हूँ - इसके काले बेंट पर बहुत सुंदर फूल की पाँखुरियों जैसे गुलाबी नाखूनोंवाली लंबी पतली

उँगलियाँ आवेश से काँप रही हैं, एक चेहरा जो आवेश से आरक्त है, थोड़ी निराशा से नीला है और थोड़े डर से विवर्ण है! यह स्मृति-चित्र है सत्ती का जब वह अंतिम बार मुझे मिली थी और मैं आँख उठा कर उसकी ओर देख भी नहीं सका था। उसके हाथ में यही चाकू था।'

उसके बाद उन्होंने सत्ती की जो कहानी बताई, उसे टेकनीक न निबाह कर मैं संक्षेप में बताए देता हूँ :

माणिक मुल्ला का कहना था कि वह लड़की अच्छी नहीं कही जा सकती थी क्योंकि उसके रहन-सहन में एक अजब-सी विलासिता झलकती थी, चाल-ढाल भी बहुत उद्दीप्त करनेवाली थी, वह हर आने-जानेवाले, परिचित-अपरिचित से बोलने-बतियाने के लिए उत्सुक रहती थी, गली में चलते-चलते गुनगुनाती रहती थी और अकारण ही लोगों की ओर देख कर मुसकरा दिया करती थी।

लेकिन माणिक मुल्ला का कहना था कि वह लड़की बुरी भी नहीं कही जा सकती थी क्योंकि उसके बारे में कोई वैसी अफवाह नहीं थी और सभी लोग अच्छी तरह जानते थे कि अगर कोई उसकी तरफ ऐसी-वैसी निगाह से देखता तो वह आँखें निकाल सकती है। उसकी कमर में एक काले बेंट का चाकू हमेशा रहा करता था।

लोगों का यह कहना था कि उसका चाचा, जिसके साथ वह रहती थी, रिश्ते में उसका कोई नहीं है, वह असल में फतेहपुर के पास के किसी गाँव का नाई है जो सफरमैना पल्टन में भरती हो कर क्वेटा बलूचिस्तान की ओर गया था

और वहाँ किसी गाँव के नेस्तनाबूद हो जाने के बाद यह तीन-चार बरस की लड़की उसे रोती हुई मिली थी जिसे वह उठा लाया और पालने-पोसने लगा था। बहुत दिनों तक वह लड़की उधर ही रही, और अंत में उसका एक हाथ कट जाने के बाद उसे पेंशन मिल गई और वह आ कर यहीं रहने लगा। एक हाथ कट जाने से वह अपना पुश्तैनी पेशा तो नहीं कर सकता था, लेकिन उसने यहाँ आ कर साबुनसाजी शुरू कर दी थी और चमन ठाकुर का पहिया छाप साबुन न सिर्फ मुहल्ले में, वरन चौक तक की दुकानों पर बेचा जाता था। चूँकि उसका एक हाथ कटा हुआ था, अत: सोलह-सत्रह साल की अनिंद्य सुंदरी सत्ती साबुन जमाती थी, उसके टुकड़े उसी काले बेंट के चाकू से काटती थी, उन्हें दुकानदारों के यहाँ पहुँचाती थी और हर पखवारे के अंत में जा कर उसका दाम वसूल कर लाती थी। हर दुकानदार उसके सिर पर बँधे रंग-बिरंगे रूमाल, उसके बलूची कुरते, उसके चौड़े गरारे की ओर एक दबी निगाह डालता और दूसरे साबुनों के बजाय पहिया छाप साबुन दुकान पर रखता, ग्राहकों से उसकी सिफारिश करता और उसकी यह तमन्ना रहती कि कैसे सत्ती को पखवारे के अंत में ज्यादा-से-ज्यादा कलदार दे सके।

चमन ठाकुर कारखाने के बाहर खाट डाल कर नारियल का हुक्का पीते रहते थे और सत्ती अंदर काम करती थी। श्रम ने सत्ती के बदन में एक ऐसा गठन, चेहरे पर एक ऐसा तेज, बातों में एक ऐसा अदम्य आत्मविश्वास पैदा कर दिया था कि जब उसे माणिक मुल्ला ने देखा तो उनके मन में लिली का अभाव बहुत हद तक भर गया और सत्ती के व्यक्तित्व से मंत्र-मुग्ध हो गए।

सत्ती से उनकी भेंट अजब ढंग से हुई। कारखाने के बाहर चमन और सत्ती मिल कर गंगा महाजन के यहाँ का देना-पावना जोड़ रहे थे। चमन ने जो

कुछ पढ़ा-लिखा था वह भूल चुके थे, सत्ती ने थोड़ा पढ़ा था पर यह हिसाब काफी जटिल था। उधर माणिक मुल्ला दही ले कर घर जा रहे थे कि दोनों को हिसाब पर झगड़ते देखा। सत्ती सिर झटकती थी तो उसके कानों के दोनों बुंदे चमक उठते थे और हँसती थी तो मोती-से दाँत चमक जाते थे, मुड़ती थी तो कंचन-सा बदन झलमला उठता था और सिर झुकाती थी तो नागिन-सी अलकें झूल जाती थीं। अब अगर माणिक मुल्ला के कदम धरती से चिपक ही गए तो इसमें माणिक मुल्ला का कौन कसूर?

इतने में चमन ठाकुर बोले, 'जै राम जी की भइया!' और उनके कटे हुए दाएँ हाथ ने जुंबिश खाई और फिर लटक गया। सत्ती हँस कर बोली, 'लो जरा हिसाब जोड़ दो माणिक बाबू!' और माणिक बाबू भाभी के लिए दही ले जाना भूल कर इतनी देर तक हिसाब लगाते रहे कि भाभी ने खूब डाँटा। लेकिन उस दिन से अक्सर उनके जिम्मे सत्ती का हिसाब जोड़ना आता रहा और गणितशास्त्र में एकाएक उनकी जैसी दिलचस्पी बढ़ गई, उसे देख कर ताज्जुब होता था।

माणिक मुल्ला की गिनती पता नहीं क्यों सत्ती अपने मित्रों में करने लगी। एक ऐसा मित्र जिस पर पूर्ण विश्वास किया जा सकता है। एक ऐसा मित्र जिसे सभी साबुन के नुस्खे निस्संदेह बताए जा सकते थे। जिसके बारे में पूरा भरोसा था कि वह साबुन के नुस्खों को दूसरी कंपनीवालों को नहीं बता देगा। जिस पर सारा हिसाब छोड़ा जा सकता था, जिससे यह भी सलाह ली जा सकती थी कि हरधन स्टोर्स को माल उधार दिया जा सकता है या नहीं। माणिक के आते ही सत्ती सारा काम छोड़ कर उठ आती, दरी बिछा देती, जमे हुए साबुन के थाल ले आती और कमर से काला चाकू निकाल कर साबुन की

सलाखें काटती जाती और माणिक को दिनभर का सारा दु:ख-सुख बताती जाती। किस बनिए ने बेईमानी की, किसने सबसे ज्यादा साबुन बेचा, कहाँ किराने की नई दुकान खुली है, वगैरह।

माणिक मुल्ला उसके पास बैठ कर एक अजब-सी बात महसूस करते थे। इस मेहनत करनेवाली स्वाधीन लड़की के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा था जो न पढ़ी-लिखी भावुक लिली में था और न अनपढ़ी दमित मनवाली जमुना में था। इसमें सहज स्वस्थ ममता थी जो हमदर्दी चाहती थी, हमदर्दी देती थी। जिसकी मित्रता का अर्थ था एक दूसरे के दु:ख-सुख, श्रम और उल्लास में हाथ बँटाना। उसमें कहीं से कोई गाँठ, कोई उलझन, कोई भय, कोई दमन, कोई कमजोरी नहीं थी, कोई बंधन नहीं था। उसका मन खुली धूप की तरह स्वच्छ था। अगर उसे लिली की तरह थोड़ी शिक्षा भी मिली होती तो सोने में सुहागा होता। मगर फिर भी उसमें जो कुछ था वह माणिक मुल्ला को आकाश के सपनों में विहार करने की प्रेरणा नहीं देता था, न उन्हें विकृतियों की अँधेरी खाइयों में गिराता था। वह उन्हें धरती पर सहज मानवीय भावना से जीने की प्रेरणा देती थी। वह कुछ ऐसी भावनाएँ जगाती थी जो ऐसी ही कोई मित्र संगिनी जगा सकती थी जो स्वाधीन हो, जो साहसी हो, जो मध्यवर्ग की मर्यादाओं के शीशों के पीछे सजी हुई गुड़िया की तरह बेजान और खोखली न हो। जो सृजन और श्रम में सामाजिक जीवन में उचित भाग लेती हो, अपना उचित देय देती हो।

मेरा यह मतलब नहीं कि माणिक मुल्ला उसके पास बैठ कर यह सब चिंतन किया करते थे। नहीं, यह सब तो उस परिस्थिति का मेरा अपना विश्लेषण है, वैसे माणिक मुल्ला को तो वह केवल बहुत अच्छी लगती थी और उन

दिनों माणिक मुल्ला का मन पढ़ने में भी लगने लगा, काम करने में भी, और उनका वजन भी बढ़ गया और उन्हें भूख भी खुल कर लगने लगी, वे कॉलेज के खेलों में भी हिस्सा लेने लगे।

माणिक मुल्ला ने जरा झेंपते हुए यह भी स्वीकार किया कि उनके मन में सत्ती के लिए बहुत आकर्षण जाग गया था और अक्सर सत्ती की हाथी-दाँत-सी गरदन को चूमते हुए उसके लंबे झूलते बुंदों को देख कर उनके होठ काँपने लगते थे, और माथे की नसों में गरम खून जोर से सूरज का सातवाँ घोड़ाने लगता था। पर सारी मित्रता के बावजूद कभी सत्ती के व्यवहार में उसे जमुना-सी कोई बात नहीं दिखाई पड़ी। माणिक की निगाह जब उसके झूलते हुए बुंदों पर पड़ती और उनका माथा गरम हो जाता, तभी उनकी निगाह सत्ती की कमर से झूलते हुए चाकू पर भी पड़ती और माथा फिर ठंडा हो जाता, क्योंकि सत्ती उन्हें बता चुकी थी कि एक बार एक बनिए ने साबुन की सलाखें रखवाते हुए कहा, 'साबुन तो क्या मैं साबुनवाली को भी दुकान पर रख लूँ' तो सत्ती ने फौरन चाकू खोल कर कहा, 'मुझे अपनी दुकान पर रख और ये चाकू अपनी छाती में रख कमीने!' तो सेठ ने सत्ती के पाँव छू कर कसम खाई कि वह तो मजाक कर रहा था, वरना वह तो अपनी पहली ही सेठानी नहीं रख पाया। वही दरबान के साथ चली गई अब भला सत्ती को क्या रखेगा!

इसी घटना को याद कर माणिक मुल्ला कभी कुछ नहीं कहते थे, पर मन-ही-मन एक अव्यक्त करुण उदासी उनकी आत्मा पर छा गई थी और उन दिनों वे कुछ कविताएँ भी लिखने लगे थे जो बहुत करुण विरहगीत होती थीं जिनमें कल्पना कर लेते थे कि सत्ती उनसे दूर कहीं चली गई है और फिर

वे सत्ती को विश्वास दिलाते थे कि प्रिये, तुम्हारे प्रणय का स्वप्न मेरे हृदय में पल रहा है और सदा पलता रहेगा। कभी-कभी वे बहुत व्याकुल हो कर लिखते थे जिसका भावार्थ होता था कि मेघों की छाया में तो अब मुझसे तृषित नहीं रहा जाता, आदि-आदि। सारांश यह कि वे जो कुछ सत्ती से नहीं कह पाते थे उसे गीतों में बाँध डालते थे पर जब कभी सत्ती के सामने उन्होंने उसे गुनगुनाने का प्रयास किया तो सत्ती हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई और बोली, तुमने बन्ना सुना है? साँझी सुनी है? और तब वह मुहल्ले में गाए जानेवाले गीत इतनी दर्द-भरी आवाज में गाती थी कि माणिक मुल्ला भावविभोर हो उठते थे और अपने गीत उन्हें कृत्रिम और शब्दाडंबरपूर्ण लगने लगते थे। ऐसी थी सत्ती, सदैव निकट, सदैव दूर, अपने में एक स्वतंत्र सत्ता, जिसके साथ माणिक मुल्ला के मन को संतोष भी मिलता था और आकुलता भी।

कभी-कभी वे सोचते थे कि अपनी भावनाओं को पत्र के माध्यम से लिख डालें और वे कभी-कभी पत्र लिखते भी थे बहुत लंबे-लंबे और बहुत मधुर, यहाँ तक कि अगर वे बचे होते तो उनकी गणना नेपोलियन और सीजर के प्रेम-पत्रों के साथ की जाती, मगर जब उसमें 'आत्मा की ज्योति' - 'चाँद की राजकुमारी' आदि वे लिख चुकते तो उन्हें खयाल आता कि यह भाषा तो बेचारी सत्ती समझती नहीं, और जो भाषा उसकी समझ में आती थी उसका व्यवहार करने पर कमर में लटकनेवाले काले चाकू की तसवीर दिमाग में आ जाती थी। अत: उन्होंने वे सब खत फाड़ डाले।

उसी बीच में सत्ती की ममता माणिक के प्रति दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती गई और जब-जब माणिक मुल्ला कहीं जाते, बाहर बैठा हुआ चमन ठाकुर

अपना कटा हाथ हिला कर इन्हें सलाम करता, हँसता और पीठ पीछे इन्हें बहुत खूनी निगाह से देख कर दाँत पीसता और पैर पटक कर हुक्के के अंगारे कुरेदता। सत्ती माणिक के खाने-पीने, कपड़े-लत्ते, रहन-सहन में बहुत दिलचस्पी लेती और बाद में अपनी अड़ोसिन-पड़ोसिन से बतलाती कि माणिक बारहवें दरजे में पढ़ रहे हैं और इसके बाद बड़े लाट के दफ्तर में इन्हें नौकरी मिल जाएगी और हमेशा माणिक को याद दिलाती रहती थी कि पढ़ने में ढिलाई मत करना।

पर एक बात अक्सर माणिक देखते थे कि सत्ती अब कुछ उदास-सी रहने लगी है और कोई ऐसी बात है जो यह माणिक से छिपाती है। माणिक ने बहुत पूछा पर उसने नहीं बताया। पर वह अक्सर चमन ठाकुर को झिड़क देती थी, राह में उसकी चिलम पड़ी रहती थी तो उसे ठोकर मार देती थी, खुद कभी हिसाब न करके उसके सामने कापी और वसूली के रुपए फेंक देती थी। चमन ठाकुर ने एक दिन माणिक से कहा कि मैं अगर इसे न ला कर पालता-पोसता तो इसे चील और गिद्ध नोच-नोच कर खा गए होते और यही जब माणिक ने सत्ती से कहा तो वह बोली, 'चील और गिद्ध खा गए होते तो वह अच्छा होता बजाय इसके कि यह राक्षस उसे नोचे खाए!' माणिक ने सशंकित हो कर पूछा तो वह बहुत झल्ला कर बोली, 'यह मेरा चाचा बनता है। इसीलिए पाल-पोस कर बड़ा किया था। इसकी निगाह में खोट आ गया है। पर मैं डरती नहीं। यह चाकू मेरे पास हमेशा रहता है।' और उसके बाद उन्होंने सत्ती को पहली बार रोते देखा और वह अनाथ, मेहनती और निराश्रित लड़की फूट-फूट कर रोई और उन्हें कई घटनाएँ बतायीं। यह बात सुन कर माणिक मुल्ला को अपने कानों पर यकीन नहीं हुआ पर वे बहुत व्यथित हुए और यह जान कर कि ऐसा भी हो सकता है उनके मन पर बहुत

धक्का लगा। उस दिन शाम को उनसे खाना नहीं खाया गया और यह सोच कर उनकी आँख में आँसू भी आ गए कि यह जिंदगी इतनी गंदी और विकृत क्यों है।

उसके बाद उन्होंने देखा कि सत्ती और चमन ठाकुर में कटुता बढ़ती ही गई, साबुन का रोजगार भी ठंडा होता गया और अक्सर माणिक के जाने पर सत्ती रोती हुई मिलती और चमन ठाकुर चीखते-गरजते हुए मिलते। वे रिटायर्ड सोल्जर थे अत: कहते थे - शूट कर दूँगा तुझे। संगीन से दो टुकड़े कर दूँगा। तूने समझा क्या है? आदि-आदि।

सत्ती के चेहरे पर थोड़ी खुशी उस दिन आई जिस दिन उसे मालूम हुआ कि माणिक बारहवाँ दरजा पास हो गए हैं। उसने उस दिन महीनों बाद पहली बार चमन ठाकुर से जा कर दो रुपए माँगे, एक की मिठाई मँगाई और दूसरे के फूल-बताशे चंडी के चौतरे पर चढ़ा आई। पर उस दिन माणिक आए ही नहीं। जिस दिन माणिक आए उस दिन उसे यह जान कर बड़ी निराशा हुई कि माणिक नौकरी नहीं करेंगे, बल्कि पढ़ेंगे, हालाँकि भैया-भाभी ने साफ मना कर दिया है कि अब जमाना बुरा है और वे माणिक का खर्चा नहीं उठा सकते। सत्ती की राय भैया-भाभी के साथ थी; क्योंकि वह अपनी आँख से माणिक को बड़े लाट के दफ्तर में देखना चाहती थी, पर जब उसने माणिक की इच्छा पढ़ने की देखी तो कहा, 'उदास मत होओ। अगर मैं यहीं रही तो मैं दूँगी तुम्हें रुपए। अगर नहीं रही तो देखा जाएगा।'

माणिक मुल्ला ने घबरा कर पूछा कि 'कहाँ जाओगी तुम?' तो सत्ती ने एक और बात बताई जिससे माणिक स्तब्ध रह गए।

महेसर दलाल, यानी जमुनावाले तन्ना का पिता, अक्सर आया करता था और चूँकि दलाल होने के नाते उसकी सुनारों और सर्राफों से काफी जान-पहचान थी अत: वह गिलट के कड़े और पायल पर पॉलिश करा कर और चाँदी के गहनों पर नकली सुनहरा पानी चढ़वा कर लाता था और सत्ती को देने की कोशिश करता था। जब माणिक मुल्ला ने पूछा कि चमन ठाकुर कुछ नहीं कहते तो बोली कि रोजगार तो पहले ही चौपट हो चुका है, चमन गाँजा और दारू खूब पीता है। महेसर दलाल उसे रोज नए नोट ला कर देते हैं। रोज उसे अपने साथ ले जाते हैं। रात को वह पिए हुए आता है और ऐसी बातें बकता है कि सत्ती अपना दरवाजा अंदर से बंद कर लेती है और रात-भर डर के मारे उसे नींद नहीं आती। इतना कह कर वह रो पड़ी और बोली, सिवा माणिक के उसका अपना कोई नहीं है और माणिक भी उसे कोई रास्ता नहीं बताते।

माणिक उस दिन बहुत ही व्यथित हुए और उस दिन उन्होंने एक बहुत ही करुण कविता लिखी और उसे ले कर किसी स्थानीय पत्र में देने ही जा रहे थे कि रास्ते में सत्ती मिली। वह बहुत घबराई हुई थी और रोते-रोते उसकी आँखें सूज आई थीं। उसने माणिक को रोक कर कहा, 'तुम मेरे यहाँ मत आना। चमन ठाकुर तुम्हारा कत्ल करने पर उतारू है। चौबीसों घंटे नशे में धुत रहता है। तुम्हें मेरी माँग की कसम है। तुम फिकर न करना। मेरे पास चाकू रहता है और फिर कोई मौका पड़ा तो तुम तो हो ही। जानते हो, वह बूढ़ा पोपला महेसरा मुझसे ब्याह करने को कह रहा है!'

माणिक का मन बहुत आकुल रहा। कई बार उन्होंने चाहा कि सत्ती की ओर जाएँ पर सच बात है कि नशेबाज चमन का क्या ठिकाना, एक ही हाथ है पर सिपाही का हाथ ठहरा।

इस बीच में एक बात और हुई। यह सारा किस्सा माणिक मुल्ला के नाम के साथ बहुत नमक-मिर्च के साथ फैल गया और मुहल्ले की कई बूढ़ियों ने आ कर बीजा छीलते हुए माणिक की भाभी को कहानी बताई और ताकीद की कि उसका ब्याह कर देना चाहिए, कई ने तो अपने नातेदारों की सुंदर सुशील लड़कियाँ तक बताईं। भाभी ने थोड़ी अपनी तरफ से भी जोड़ कर भइया से पूरा किस्सा बताया और भइया ने दूसरे दिन माणिक को बुला कर समझाया कि उन्हें माणिक पर पूरा विश्वास है, लेकिन माणिक अब बच्चे नहीं हैं, उन्हें दुनिया को देख कर चलना चाहिए। इन छोटे लोगों को मुँह लगाने से कोई फायदा नहीं। ये सब बहुत गंदे और कमीने किस्म के होते हैं। माणिक के खानदान का इतना नाम है। माणिक अपने भइया के स्नेह पर बहुत रोए और उन्होंने वायदा किया कि अब वे इन लोगों से नहीं घुले-मिलेंगे।

दो-तीन बार सत्ती आई पर माणिक मुल्ला अपने घर से बाहर नहीं निकले और कहला दिया कि नहीं हैं। माणिक अक्सर जमुना के यहाँ जाया करते थे और एक दिन जमुना के दरवाजे पर सत्ती मिली। माणिक कुछ नहीं बोले तो सत्ती रो कर बोली, 'नसीब रूठ गया तो तुमने भी साथ छोड़ दिया। क्या गलती हो गई मुझसे?' माणिक ने घबरा कर चारों ओर देखा। भइया के दफ्तर से लौटने का वक्त हो गया था। सत्ती उनकी घबराहट समझ गई, क्षण-भर उनकी ओर बड़ी अजब निगाह से देखती रही फिर बोली, 'घबराओ न माणिक! हम जा रहे हैं।' और आँसू पोंछ कर धीरे-धीरे चली गई।

उन्हीं दिनों भाभी और माणिक के बीच अक्सर झगड़ा हुआ करता था क्योंकि भाभी-भइया साफ कह चुके थे कि माणिक को अब कहीं नौकरी कर लेनी चाहिए। पढ़ने की कोई जरूरत नहीं। पर माणिक पढ़ना चाहते थे। भाभी ने एक दिन जब बहुत जली-कटी सुनाई तो माणिक उदास हो कर एक बाग में जा कर बरगद के नीचे बेंच पर बैठ गए और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए।

थोड़ी देर बाद उन्हें किसी ने पुकारा तो देखा सामने सत्ती। बिलकुल शांत, मुरदे की तरह सफेद चेहरा, भावहीन जड़ आँखें, आई और आ कर पाँवों के पास जमीन पर बैठ गई और बोली, 'आखिर जो सब चाहते थे वह हो गया।'

माणिक के पूछने पर उसने बताया कि कल रात को चमन ठाकुर के साथ महेसर दलाल आया। दोनों बड़ी रात तक बैठ कर शराब पीते रहे। सहसा महेसर से बहुत-से रुपयों की थैली ले कर चमन उठ कर बाहर चला गया और महेसर आ कर सत्ती से ऐसी बातें करने लगा जिसे सुन कर सत्ती का तन-बदन सुलगने लगा और सत्ती बाहर के दरवाजे की ओर बढ़ी तो देखा चमन उसे बाहर से बंद करके चला गया है। सत्ती ने फौरन अपना चाकू निकाला और महेसर दलाल को एक धक्का दिया तो महेसर दलाल लुढक गए। एक तो बूढ़े दूसरे शराब में चूर और सत्ती जो चाकू ले कर उनकी गरदन पर चढ़ बैठी तो उनका सारा नशा काफूर हो गया और बोले, 'मार डाल मुझे, मैं उफ न करूँगा। मैं तुझ पर हाथ न उठाऊँगा। लेकिन मैंने नकद पाँच सौ रुपया दिया है। मैं बाल-बच्चेदार आदमी मर जाऊँगा।' और उसके बाद हिचकियाँ भर-भर कर रोने लगा और फिर उसने वह कागज दिखाया जिस

पर चमन ठाकुर ने पाँच सौ पर उसके साथ सत्ती को भेजने की शर्त की थी और महेसर रोने लगा और सत्ती के जैसे किसी ने प्राण खींच लिए हों। महेसर के हाथ-पाँव फूल गए। फिर महेसर दलाल ने समझाया कि अब तो कानूनी कार्रवाई हो गई है। फिर महेसर दलाल सुख से रखेगा वगैरह-वगैरह - पर सत्ती जड़ मुरदे-सी पड़ी रही। उसे याद नहीं महेसर ने क्या कहा, उसे याद नहीं क्या हुआ।

सत्ती चुपचाप नीची निगाह किए नखों से धरती खोदती रही और फिर माणिक की ओर देख कर बोली, 'महेसर ने आज यह अँगूठी दी है।' माणिक ने हाथ में ले कर देखा तो मुसकराने का प्रयास करती हुई बोली, 'असली है।' माणिक चुप हो रहे। सत्ती ने थोड़ी देर बाद पूछा कि माणिक उदास क्यों हैं तो माणिक ने बताया कि भाभी से पढ़ाई के बारे में चख-चख हो गई है तो सत्ती ने अँगूठी निकाल कर फौरन माणिक के हाथ में रख दी और कहा कि इससे वह फीस जमा कर दे। आगे की बात सत्ती के हाथ में छोड़ दे। माणिक ने इसे नहीं स्वीकार किया तो क्षण-भर सत्ती चुप रही फिर सहसा बोली, 'मैं समझ गई। अब तुम मुझसे कुछ नहीं लोगे। पर बताओ मैं क्या करूँ? मुझे कोई भी तो नहीं बताता। मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। मुझे कोई रास्ता बताओ? कोई रास्ता - तुम जो कहोगे - मैं हर तरह से तैयार हूँ।' और सचमुच सत्ती जो अब तक पत्थर की तरह निष्प्राण बैठी थी पाँव पकड़ कर फूट-फूट कर रो पड़ी। माणिक घबरा कर उठे पर उसने पाँवों पर सिर रख दिया और इतना रोई इतना रोई कि कुछ पूछो मत। पर माणिक ने कहा कि अब उन्हें देर हो रही है। तो वह चुपचाप उठी और चली गई।

एक बार फिर वह मिली और माणिक उस दिन भी उदास थे क्योंकि जुलाई आ गई थी और उनके दाखिले का कुछ निश्चय ही नहीं हो पा रहा था। सत्ती ने बहुत इसरार करके माणिक को रुपए दिए ताकि उनका काम न रुके और फिर बहुत बिलख-बिलख कर रोई और कहा कि उसकी जिंदगी नरक हो गई है। उसे कोई राह नहीं बताता। माणिक मुल्ला ने सांत्वना का एक शब्द भी नहीं कहा, तो वह चुप हो गई और पूछने लगी कि माणिक को उसकी बातें बुरी तो नहीं लगतीं क्योंकि माणिक के अलावा और कोई नहीं है जिससे वह अपना दु:ख कह सके। और माणिक से न जाने क्यों वह कोई बात नहीं छिपा पाती है और उनसे कह देने पर उसका मन हल्का हो जाता है और उसे लगता है कि कम-से-कम एक आदमी ऐसा है जिसके आगे उसकी आत्मा निष्पाप और अकलुष है।

माणिक के सामने कोई रास्ता नहीं था और सच तो यह है कि भइया का कहना भी उन्हें ठीक लगता था कि माणिक का और इन लोगों का क्या मुकाबला, दोनों की सोसायटी अलग, मर्यादा अलग, पर माणिक मुल्ला सत्ती से कुछ कह भी नहीं पाते थे क्योंकि उन्हें पढ़ाई भी जारी रखनी थी, और इसी अंतर्द्वंद्व के कारण उनके गीतों में गहन निराशा और कटुता आती जा रही थी।

और फिर एक रात एक अजब-सी घटना हुई। माणिक मुल्ला सो रहे थे कि सहसा किसी ने उन्हें जगाया और उन्होंने आँख खोली तो सामने देखा सत्ती! उसके हाथ में चाकू था, उसकी लंबी-पतली गुलाबी उँगलियों में चाकू काँप रहा था, चेहरा आवेश से आरक्त, निराशा से नीला, डर से विवर्ण। उसकी बगल में एक छोटा-सा बैग था जिसमें गहने और रुपए भरे थे। सत्ती माणिक

के पाँव पर गिर पड़ी और बोली, 'किसी तरह चमन ठाकुर से छूट कर आई हूँ। अब डूब मरूँगी पर वहाँ नहीं लौटूँगी। तुम कहीं ले चलो! कहीं! मैं काम करूँगी। मजदूरी कर लूँगी। तुम्हारे भरोसे चली आई हूँ।'

माणिक का यह हाल कि ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे। कविता-उविता तो ठीक है पर यह इल्लत माणिक कहाँ पालते! और फिर भइया ठहरे भइया और भाभी उनसे सात कदम आगे। माणिक की सारी किस्मत बड़े पतले तागे पर झूल रही थी। पर आखिर दिमाग माणिक मुल्ला का ठहरा। खेल ही तो गया। फौरन बोले, 'अच्छा बैठो सत्ती! मैं अभी चलूँगा। तुम्हारे साथ चलूँगा।' और इधर पहुँचे भइया के पास। चुपचाप दो वाक्यों में सारी स्थिति बता दी। भइया बोले, 'उसे बिठाओ, मैं चमन को बुला लाऊँ।' माणिक गए और सत्ती जितना इसरार करे जल्दी निकल चलने को कि कहीं महेसर दलाल या चमन ही न आ पहुँचे उतना माणिक किसी-न-किसी बहाने टालते जाएँ और जब सत्ती ने चाकू चमका कर कहा कि 'अगर नहीं चलोगे तो आज या तो मेरी जान जाएगी या और किसी की' तो माणिक का रोम-रोम थर्रा उठा और मन-ही-मन माणिक भइया को स्मरण करने लगे।

सत्ती उनसे पूछती रही, 'कहाँ चलोगे? कहाँ ठहरोगे? कहाँ नौकरी दिलाओगे? मैं अकेली नहीं रहूँगी!' इतने में एक हाथ में लाठी लिए महेसर और एक में लालटेन लिए चमन ठाकुर आ पहुँचे ओर पीछे-पीछे भइया और भाभी। सत्ती देखते ही नागिन की तरह उछल कर कोने में चिपक गई और क्षण-भर में ही स्थिति समझ कर चाकू खोल कर माणिक की ओर लपकी, 'दगाबाज! कमीना!' पर भइया ने फौरन माणिक को खींच लिया, महेसर ने सत्ती को दबोचा और भाभी चीख कर भागीं।

उसके बाद कमरे में भयानक दृश्य रहा। सत्ती काबू में ही न आती थी, पर जब चमन ठाकुर ने अपने एक ही फौजी हाथ से पटरा उठा कर सत्ती को मारा तो वह बेहोश हो कर गिर पड़ी। इसी अवस्था में सत्ती का चाकू वहीं छूट गया और उसके गहनों का बैग भी पता नहीं कहाँ गया। माणिक का अनुमान था कि भाभी ने उसे सुरक्षा के खयाल से ले जा कर अपने संदूक में रख लिया था।

बेहोश सत्ती को भइया और महेसर उठा कर उसके घर पहुँचा आए और माणिक मुल्ला डर के मारे भइया के कमरे में सोए।

दूसरे दिन चमन ठाकुर के घर पर काफी जमाव था क्योंकि घर खुला पड़ा था, सामान बिखरा पड़ा था, और चमन ठाकुर तथा सत्ती दोनों गायब थे और बहुत सुबह उठ कर जो बूढ़ियाँ गंगा नहाने जाती हैं उनका कहना था कि एक ताँगा इधर से गया था जिस पर कुछ सामान लदा था, चमन ठाकुर बैठा था और आगे की सीट पर सफेद चादर से ढका कोई सो रहा था जैसे लाश हो।

लोगों का कहना था कि चमन और महेसर ने मिल कर रात को सत्ती का गला घोंट दिया।

छठी दोपहर

(क्रमागत)

पिछली दोपहर से आगे

सत्ती की मृत्यु ने माणिक मुल्ला के कच्चे भावुक कवि-हृदय पर बहुत गहरी छाप छोड़ी थी और नतीजा यह हुआ था कि उनकी कृतियों में मृत्यु की प्रतिध्वनि बार-बार सुनाई पड़ती थी।

इसी बीच में उनके भइया का तबादला हो गया और भाभी उनके साथ चली गईं और घर माणिक की देख-भाल में छोड़ दिया गया। माणिक को अकेले घर में बहुत डर लगता था और अक्सर लगता था कि जैसे वे कंकालों के सुनसान घर में छोड़ दिए गए हों। उन्हें पढ़ने का शौक था पर अब पढ़ने में उनका चित्त भी नहीं लगता था उनकी जेब भी भइया के जाने से बिलकुल खाली हो गई थी और वे कोई ऐसी नौकरी ढूँढ़ रहे थे जिसमें वे नौकरी के साथ-साथ पढ़ाई भी कायम रख सकें, इन सभी परिस्थितियों ने मिल कर उनके हृदय पर गहरी छाप छोड़ी थी और पता नहीं किस रहस्यमय आध्यात्मिक कारण से वे अपने को सत्ती की मृत्यु का जिम्मेदार समझने लगे थे। उनके मन की धीरे-धीरे यह हालत हो गई कि उन्हें मुहल्ला छोड़ कर ऐसी जगहें अच्छी लगने लगीं जैसे - दूर कहीं पर सुनसान पीपल तले की छाँह, भयानक उजाड़ कब्रगाह, पुराने मरघट, टीले और खड्ड आदि। उन्हें चाँदनी में कफन दिखाई देने लगे और धूप में प्रेयसी की चिता की ज्वालाएँ।

तब तक हम लोगों की माणिक मुल्ला से इतनी घनिष्ठता नहीं हुई थी अत: इस प्रकार की बैठकें नहीं जमती थीं और दिन-भर भटकने के बाद माणिक

अक्सर चाय-घरों में जा कर बैठा करते थे। चाय-घरों की चहल-पहल में थोड़ा-सा मन बहल जाया करता है।

(लेकिन यह मैं बता दूँ कि माणिक मुल्ला का यह खयाल बिलकुल गलत था कि सत्ती की मृत्यु हो गई है, सत्ती सिर्फ बेहोश हो गई थी और उसी हालत में चमन ठाकुर उसे ताँगे पर ले गए थे क्योंकि बदनामी के डर से महेसर दलाल नहीं चाहते थे कि वे लोग एक क्षण भी मुहल्ले में रहें। पर सत्ती कहाँ थी इसका पता बाद में माणिक को लगा।)

इधर माणिक ने यह निश्चय कर लिया था कि यदि उसकी वजह से सत्ती का जीवन नष्ट हुआ तो वे भी हर तरह से अपना जीवन नष्ट करके ही मानेंगे जैसे शरत के देवदास आदि ने किया था और इसलिए जीवन नष्ट करने के जितने भी साधन थे, उन्हें वे काम में ला रहे थे। उनका स्वास्थ्य बुरी तरह गिर गया था, उनका स्वभाव बहुत असामाजिक, उच्छृंखल और आत्मघाती हो गया था, पर उन्हें पूर्ण संतोष था क्योंकि वे सत्ती की मृत्यु का प्रायश्चित कर रहे थे। उनकी आत्मा को, उनके व्यक्तित्व को और उनकी प्रतिभा को पातक लगा हुआ था और पातक की अवस्था में और हो ही क्या सकता है।

अक्सर उनके मित्रों ने उन्हें समझाया कि आदमी में जीवन के प्रति अदम्य आस्था होनी चाहिए। मृत्यु से इस तरह का मोह तो केवल कायरता और विक्षिप्तता के लक्षण हैं, उनकी राह मुड़नी चाहिए पर फिर वे सोचते कि अपने कर्तव्य-पथ से विचलित हो रहे हैं। और उनका कर्तव्य तो मृत्युपथ पर अदम्य साहस से अग्रसर होते रहना है। ऐसा विचार आते ही वे फिर कछुए की तरह अपने को समेट कर अंतर्मुख हो जाते। धीरे-धीरे उनकी स्थिति उस

स्थितप्रज्ञ की भाँति हो गई जिसे सुख-दु:ख, मित्र-शत्रु, प्रकाश-तिमिर, सच-झूठ में कोई भेद नहीं मालूम पड़ता, जो समय और दिशा के बंधन से छुटकारा पा कर पृथ्वी पर बद्ध जीवों के बीच में जीवन्मुक्त आत्माओं की भाँति विचरण करते हैं। सामाजिक जीवन उन्हें बार-बार अपने शिकंजे में कसने का प्रयास करता था पर वे प्रेम के अलावा सभी चीजों को निस्सार समझते थे चाहे वह आर्थिक प्रश्न हो, या राजनीतिक आंदोलन, मोतिहारी का अकाल हो, या कोरिया की लड़ाई, शांति की अपील हो या सांस्कृतिक स्वाधीनता का घोषणा-पत्र। केवल प्रेम सत्य है, प्रेम जो रस है, रस जो ब्रह्मां है - (रसो वै स: - देखिए बृहदारण्यक -)।

और इस स्वयं-स्वीकृत मरण स्थिति से यह हुआ कि उनके गीत में बेहद करुणा, दर्द और निराशा आ गई और चूँकि इस पीढ़ी के हर व्यक्ति के हृदय में कहीं-न-कहीं माणिक मुल्ला और देवदास दोनों का अंश है अत: लोग झूम-झूम उठते थे। यद्यपि वे सब-के-सब ज्यादा चतुर थे, मृत्यु-गीतों की प्रशंसा करने के बाद अपने-अपने काम में लग जाते थे पर माणिक मुल्ला जरूर ऐसा अनुभव करते थे जैसे यह उजड़े हुए चकोर के टूटे हुए पंख हैं जो चाँद के पास पहुँचते-पहुँचते टूट गए और गिर रहे हैं, और हवा के हर हल्के झोंके के आघात से पथ-विचलित हो जाते हैं। सच तो यह है कि इनकी न कोई दिशा है, न पथ, न लक्ष्य, न प्रयास और न कोई प्रगति क्योंकि पतन को, नीचे गिरने को प्रगति तो नहीं कहते!

इसी समय माणिक मुल्ला से मैंने पूछा कि आखिर इस परिस्थिति से कभी आपका मन नहीं ऊबता था? वे बोले (शब्द मेरे हैं, तात्पर्य उनका) कि - ऊबता क्यों नहीं था? अक्सर मैं ऊब जाता था तो कुछ ऐसे-ऐसे करतब करता

था कि मैं भी चौंक उठता था और दूसरे भी चौंक उठते थे। जिनसे मैं अक्सर अपने को ही विश्वास दिलाया करता था कि मैं जीवित हूँ, क्रियाशील हूँ। जैसे - कह कुछ और रहा हूँ, कहते-कहते कर कुछ और गया। इसे संकीर्ण मनवाले लोग झूठ बोलना या धोखा देना भी कह सकते हैं। पर यह सब केवल दूसरों को चौंकाना मात्र था, अपनी घबराहट से ऊब कर। तीखी बातें करना, हर मान्यता को उखाड़ फेंकने की कोशिश करना, यह सब मेरे मन की उस प्रवृत्ति से प्रेरित थीं जो मेरे अंदर की जड़ता और खोखलेपन का परिणाम थीं।'

लेकिन जब हम लोगों ने पूछा कि इसमें आखिर उन्हें संतोष क्या मिलता था तो वे बोले, 'मैं महसूस करता था कि मैं अन्य लोगों से कुछ अलग हूँ, मेरा व्यक्तित्व अनोखा है, अद्वितीय है और समाज मुझे समझ नहीं सकता। साधारण लोग अत्यंत साधारण हैं, मेरी प्रतिभा के स्तर से बहुत नीचे हैं, मैं उन्हें जिस तरह चाहूँ बहका सकता हूँ। मुझमें अपने व्यक्तित्व के प्रति एक अनावश्यक मोह, उसकी विकृतियों को भी प्रतिभा का तेज समझने का भ्रम और अपनी असामाजिकता को भी अपनी ईमानदारी समझने का अनावश्यक दंभ आ गया था। धीरे-धीरे मैं अपने ही को इतना प्यार करने लगा कि मेरे मन के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवालें खड़ी हो गईं और मैं स्वयं अपने अहंकार में बंदी हो गया, पर इसका नशा मुझ पर इतना तीखा था कि मैं कभी अपनी असली स्थिति पहचान नहीं पाया।'

'तो आप इस मन:स्थिति से कैसे मुक्त हुए?'

'वास्तव में एक दिन बड़ी विचित्र परिस्थिति में यह रहस्य मुझ पर खुला कि सत्ती जीवित है और अब उसके मन में मेरे लिए प्रेम के स्थान पर गहरी घृणा

है। इसका पता लगते ही मैंने सत्ती की मृत्यु को ले कर जो व्यर्थ का ताना-बाना अपने व्यक्तित्व के चारों ओर बुन रखा था वह छिन्न-भिन्न हो गया और मैं फिर एक स्वस्थ साधारण व्यक्ति की तरह हो गया।'

उसके बाद उन्होंने वह घटना बताई :

जिन चाय-घरों में वे जाते थे उनके चारों ओर अक्सर भिखारी घूमा करते थे। वे चाय पी कर बाहर निकलते कि भिखारी उन्हें घेर लिया करते।

एक दिन उन्होंने एक नए भिखारी को देखा। एक छोटी-सी लकड़ी की गाड़ी में वह बैठा था। उसका एक हाथ कटा था और एक औरत गोद में एक भिनकता हुआ बच्चा लिए गाड़ी खींचती चलती आ रही थी। वह आ कर माणिक के पास खड़ी हो गई और पीले-पीले दाँत निकाल कर कुछ कहा कि माणिक ने आश्चर्य से देखा कि वह भिखारी तो है चमन ठाकुर और यह सत्ती है। माणिक को नजदीक से देखते ही सत्ती चौंक कर दो कदम पीछे हट गई, फौरन उसका हाथ कमर पर गया - शायद चाकू की तलाश में, पर चाकू न पा कर उसने फिर प्याला उठाया और खून की प्यासी दृष्टि से माणिक की ओर देखती हुई आगे बढ़ गई।

यह देख कर कि सत्ती जीवित है और बाल-बच्चों सहित प्रसन्न है, माणिक के मन की सारी निराशा जाती रही और उन्हें नया जीवन मिल गया और कुछ दिनों बाद ही आर.एम.एस. में तन्ना की जगह खाली हुई तो कविता-कहानी छोड़ कर उन्होंने नौकरी भी कर ली और सुख से रहने लगे। (जैसे माणिक मुल्ला के अच्छे दिन लौटे वैसे राम करे सबके लौटें।) इसी के कुछ दिनों बाद

हम लोगों की माणिक मुल्ला से घनिष्ठ मित्रता हो गई और उनके यहाँ हम लोगों का अड्डा जमने लगा था।

अनध्याय

यद्‌यपि मेरा हाजमा भी दुरुस्त है और मैंने डाण्टे की डिवाइना कामेडिया भी नहीं पढ़ी है फिर भी मैं एक सपना देख रहा हूँ।

चिमनी से निकलने वाले धुएँ की तरह एक सतरंगा इंद्रधनुष धीरे-धीरे उग रहा है। आकाश के बीचों-बीच आ कर वह इंद्रधनुष टँग गया है।

एक जलता हुआ होठ, काँपता हुआ - दाईं ओर से इंद्रधनुष की ओर खिसक रहा है।

दाईं ओर माणिक का होठ, बाईं ओर लीला का। खिसकते-खिसकते इंद्रधनुष के नजदीक आ कर दोनों रुक जाते हैं।

नीचे धरती पर महेसर दलाल एक गाड़ी खींचते हुए आते हैं। गाड़ी चमन ठाकुर की भीख माँगने वाली गाड़ी है। उसमें छोटे-छोटे बच्चे बैठे हैं। जमुना का बच्चा, तन्ना का बच्चा, सत्ती का बच्चा। चमन ठाकुर का एक कटा हुआ हाथ अंधे अजगर की तरह आता है। बच्चों की गरदन में लिपट जाता है, मरोड़ने लगता है। उनका गला घुटता है।

इंद्रधनुष के दोनों प्यासे होठ और नजदीक आ जाते हैं।

तन्ना के दोनों कटे हुए पैर राक्षसों की तरह झूमते हुए आते हैं। उनमें नई लोहे की नालें जड़ी हैं। बच्चे उनसे कुचल जाते हैं। हरी घास - दूर-दूर तक बरसात से साइकिलों से कुचली हुई बीरबहूटियाँ फैली हैं। रक्त सूख कर गाढ़ा काला हो गया है। इंद्रधनुष की छाया तमाम पहाड़ों और मैदानों पर तिरछी हो कर पड़ती है।

माताएँ सिसकती हैं! जमुना, लिली, सत्ती।

दोनों होठ इंद्रधनुष के और समीप खिसकने लगते हैं - और समीप - और समीप।

एक काला चाकू इंद्रधनुष को रस्से की तरह काट देता है। दोनों होठ गोश्त के मुरदा लोथड़ों की तरह गिर पड़ते हैं।

चीलें... चीलें... चीलें... टिड्डियों की तरह अनगिनत चीलें!

सातवीं दोपहर

(सूरज का सातवाँ घोड़ा)

अर्थात वह जो सपने भेजता है!

अगले दिन मैं गया और माणिक मुल्ला से बताया कि मैंने यह सपना देखा तो वे झल्ला गए : 'देखा है तो मैं क्या करूँ? जब देखो तब 'सपना देखा है, सपना देखा है!' अरे कौन शेर, चीता देखा है कि गाते-फिरते हो!' जब मैं चुप हो गया तो माणिक मुल्ला उठ कर मेरे पास आए और सांत्वना-भरे शब्दों में बोले, 'ऐसे सपने तुम अक्सर देखते हो?' मैंने कहा, 'हाँ' तो बोले, 'इसका मतलब है कि प्रकृति ने तुम्हें विशेष कार्य के लिए चुना है! यथार्थ जिंदगी के बहुत-से पहलुओं को, बहुत-सी चीजों के आंतरिक संबंध को और उनके महत्व को तुम सपनों में एक ऐसे बिंदु से खड़े हो कर देखोगे जहाँ से दूसरे नहीं देख पाएँगे और फिर अपने सपनों को सरल भाषा में तुम सबके सामने रखोगे। समझे?' मैंने सिर हिलाया कि हाँ मैं समझ गया तो वे फिर बोले, 'और जानते हो ये सपने सूरज के सातवें घोड़े के भेजे हुए हैं!'

जब मैंने पूछा कि यह क्या बला है तो और लोग अधीर हो उठे और बोले, यह सब मैं बाद में पूछ लूँ और माणिक मुल्ला से कहानी सुनाने का इसरार करने लगे।

माणिक मुल्ला ने आगे कहानी सुनाने से इनकार किया और बोले, एक अविच्छिन्न क्रम में इतनी प्रेम-कहानियाँ बहुत काफी हैं, सच तो यह कि

उन्होंने इतने लोगों के जीवन को ले कर एक पूरा उपन्यास ही सुना डाला है। सिर्फ उसका रूप कहानियों का रखा ताकि हर दोपहर को हम लोगों की दिलचस्पी बदस्तूर बनी रहे और हम लोग ऊबें न। वरना सच पूछो तो यह उपन्यास ही था और इस ढंग से सुनाया गया था कि जो लोग सुखांत उपन्यास के प्रेमी हैं वे जमुना के सुखद वैधव्य से प्रसन्न हों, स्वर्ग में तन्ना और जमुना के मिलन पर प्रसन्न हों, लिली के विवाह से प्रसन्न हों, और सत्ती के चाकू से माणिक मुल्ला की जान बच जाने पर प्रसन्न हों, और जो लोग दुखांत के प्रेमी हैं वे सत्ती के भिखारी जीवन पर दु:खी हों, तन्ना की रेल दुर्घटना पर दु:खी हों, लिली और माणिक मुल्ला के अनंत विरह पर दु:खी हों। साथ ही माणिक मुल्ला ने हम लोगों को यह भी समझाया कि यद्यपि इन्हें प्रेम-कहानियाँ कहा गया है पर वास्तव में ये 'नेति-प्रेम' कहानियाँ हैं अर्थात जैसे उपनिषदों में यह ब्रह्म नहीं है, नेति-नेति कह कर ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण किया गया है उसी तरह उन कहानियों में 'यह प्रेम नहीं था, यह भी प्रेम नहीं था, यह भी प्रेम नहीं था', कह कर प्रेम की व्याख्या और सामाजिक जीवन में उसके स्थान का निरूपण किया गया था। 'सामाजिक जीवन' का उच्चारण करते हुए माणिक मुल्ला ने फिर कंधे हिला कर मुझे सचेत किया और बोले, तुम बहुत सपनों के आदी हो और तुम्हें यह बात गिरह में बाँध लेनी चाहिए कि जो प्रेम समाज की प्रगति और व्यक्ति के विकास का सहायक नहीं बन सकता वह निरर्थक है। यही सत्य है। इसके अलावा प्रेम के बारे में कहानियों में जो कुछ कहा गया है, कविताओं में जो कुछ लिखा गया है, पत्रिकाओं में जो छापा गया है, वह सब रंगीन झूठ है और कुछ नहीं। फिर उन्होंने यह भी बताया कि उन्होंने सबसे पहले प्रेम-कहानियाँ इसीलिए सुनाईं कि यह रूमानी विभ्रम हम लोगों के दिमाग पर ऐसी बुरी तरह छाया हुआ है कि इसके सिवा हम लोग कुछ भी सुनने के लिए तैयार न

होते। (बाद में उन्होंने अन्य बहुत से कथारूप में उपन्यास सुनाए जिन्हें यदि अवकाश मिला तो लिखूँगा, पहले इस बीच में माणिक मुल्ला की प्रतिक्रिया इन कहानियों पर जान लूँ।)

कथा-क्रम के बारे में स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने कहा कि सात दोपहर तक चलनेवाला यह क्रम बहुत कुछ धार्मिक पाठ-चक्रों के समान है जिनमें एक किसी संत के वचन या धर्म-ग्रंथ का एक सप्ताह तक पारायण होता है और रोज उन्होंने हम लोगों को एक कहानी सुनाई और अंत में निष्कर्ष बाँटा (यद्यपि इसमें आंशिक सत्य था क्योंकि कहानियों में उन्होंने निष्कर्ष बतलाया ही नहीं!) माणिक-कथाचक्र में दिनों की संख्या सात रखने का कारण भी शायद बहुत-कुछ सूरज के सात घोड़ों पर आधारित था।

अंत में मैंने फिर पूछा कि सूरज के सात घोड़ों से उनका क्या तात्पर्य था और सपने सूरज के सातवें घोड़े से कैसे संबद्ध हैं तो वे बड़ी गंभीरता से बोले कि, देखो ये कहानियाँ वास्तव में प्रेम नहीं वरन उस जिंदगी का चित्रण करती हैं जिसे आज का निम्न-मध्यवर्ग जी रहा है। उसमें प्रेम से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष, नैतिक विश्रृंखलता, इसीलिए इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अँधेरा मध्यवर्ग पर छा गया है। पर कोई-न-कोई ऐसी चीज है जिसने हमें हमेशा अँधेरा चीर कर आगे बढ़ने, समाज-व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुन: स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है। चाहे उसे आत्मा कह लो चाहे कुछ और। और विश्वास, साहस,सत्य के प्रति निष्ठा उस प्रकाशवाही आत्मा को उसी तरह आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े सूर्य को आगे बढ़ा ले चलते हैं। कहा भी गया है, 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'

तो वास्तव में सूर्य के रथ को आगे बढ़ना ही है। हुआ यह कि हमारे वर्ग-विगलित, अनैतिक, भ्रष्ट और अँधेरे जीवन की गलियों में चलने से सूर्य का रथ काफी टूट-फूट गया है और बेचारे घोड़ों की तो यह हालत है कि किसी की दुम कट गई है तो किसी का पैर उखड़ गया है, तो कोई सूख कर ठठरी हो गया है, तो किसी के खुर घायल हो गए हैं। अब बचा है सिर्फ एक घोड़ा जिसके पंख अब भी साबित हैं, जो सीना ताने, गरदन उठाये आगे चल रहा है। वह घोड़ा है भविष्य का घोड़ा, तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हें निष्पाप बच्चों का घोड़ा; जिनकी जिंदगी हमारी जिंदगी से ज्यादा अमन-चैन की होगी, ज्यादा पवित्रता की होगी, उसमें ज्यादा प्रकाश होगा, ज्यादा अमृत होगा। वही सातवाँ घोड़ा हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है ताकि हम वह रास्ता बना सकें जिन पर हो कर भविष्य का घोड़ा आएगा; इतिहास के वे नए पन्ने लिख सकें जिन पर अश्वमेध का दिग्विजयी घोड़ा दौड़ेगा। माणिक मुल्ला ने यह भी बताया कि यद्यपि बाकी छह घोड़े दुर्बल, रक्तहीन और विकलांग हैं पर सातवाँ घोड़ा तेजस्वी और शौर्यवान है और हमें अपना ध्यान और अपनी आस्था उसी पर रखनी चाहिए।

माणिक मुल्ला ने इसी बात को ध्यान में रखते हुए माणिक-कथाचक्र की इस प्रथम श्रृंखला का नाम 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' रखा था। संभव है यह नाम आपको पसंद न आवे इसीलिए मैंने यह कबूल कर लिया कि यह मेरा दिया हुआ नहीं है।

अंत में मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस लघु उपन्यास की विषय-वस्तु में जो कुछ भी भलाई-बुराई हो उसका जिम्मा मुझ पर नहीं माणिक मुल्ला पर ही है। मैंने सिर्फ अपने ढंग से वह कथा आपके सामने प्रस्तुत कर दी है। अब आप माणिक मुल्ला और उनकी कथाकृति के बारे में अपनी राय बनाने के लिए स्वतंत्र हैं।

+ इति +